शान्ति-सन्देश

फरवरी २०१५ ई०

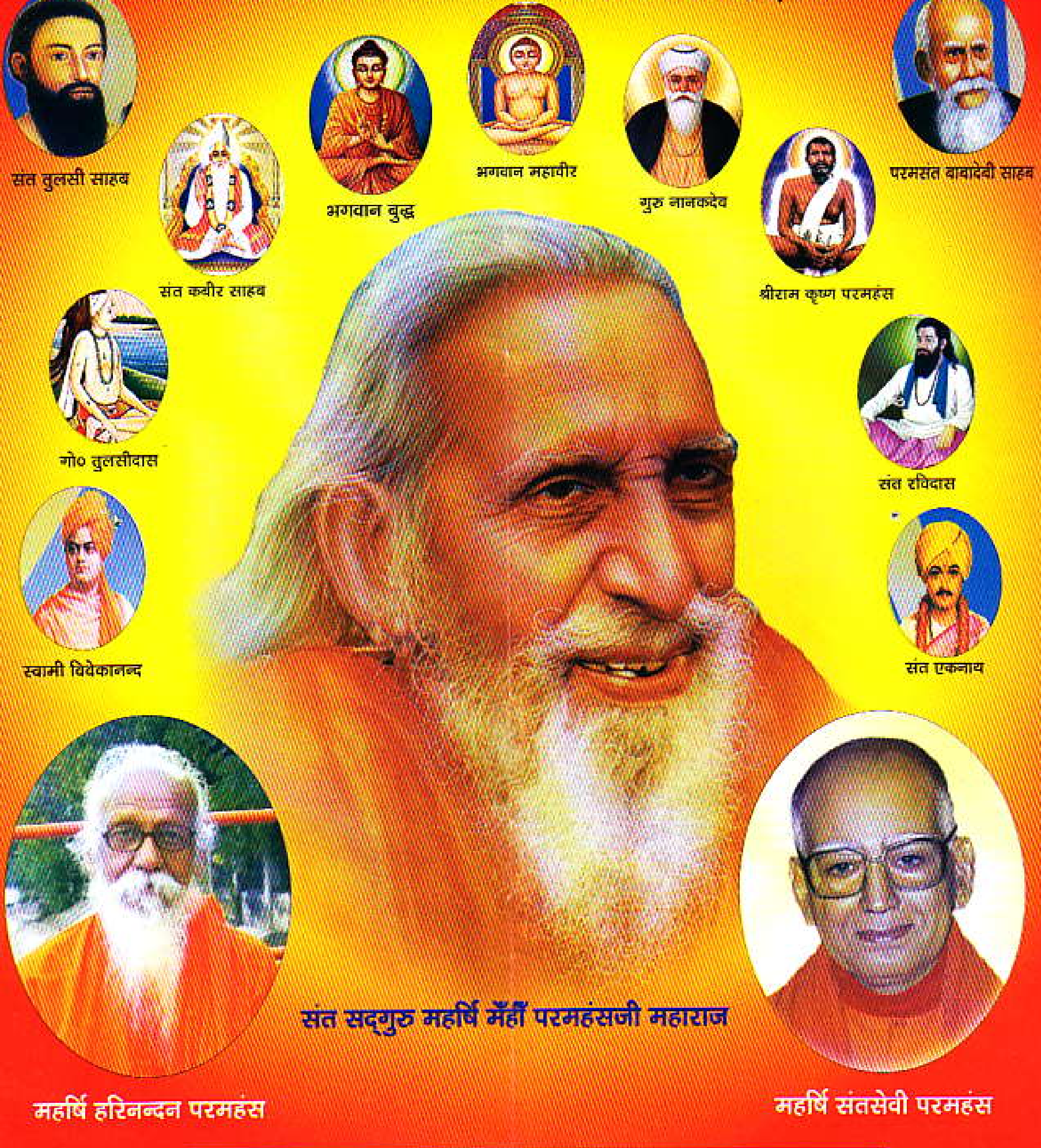

महर्षि मेँहीँ आश्रम कुप्पाघाट भागलपुर, बिहार (भारत) पिन-812003

विषय-सूची

क्रम	विषय	पृष्ठ
१.	सूक्ति-कण	१
२.	संतवाणी–गुरु तेग बहादुर जी एवं गुरु गोविन्द सिंहजी की वाणी	२
३.	सत्संग-सुधा–परमाराध्य संत सद्गुरु महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज	३
४.	प्रवचन-पीयूष–पूज्यपाद महर्षि संतसेवी परमहंसजी महाराज	६
५.	गुरु-वचन–पूज्यपाद महर्षि हरिनन्दन परमहंसजी महाराज	१०
६.	संत वचन शीतल सुधा करत ताप त्रय नाश	१७
७.	ब्रह्म-निरूपण–समर्थ गुरु रामदासजी महाराज	१९
८.	भक्ति–श्रीरामकृष्ण परमहंसजी महाराज	२०
९.	सत्संग मानसरोवर है–महामंडलेश्वर गोविन्दप्रकाशजी महाराज	२१
१०.	सुख और अक्षय आनंद का स्रोत सत्संग–पद्माबाई	२२
११.	त्याग के बिना उन्नति संभव नहीं–जेम्स एलन	२५
१२.	सम्पादकीय	२६

सूचना

पूज्यपाद महर्षि हरिनन्दन परमहंसजी महाराज की ८१वीं पावन जयन्ती

दिनांक–२७ मार्च, २०१५ ई० (शुक्रवार)

परम हर्ष की बात है कि पूज्यपाद महर्षि हरिनन्दन परमहंसजी महाराज की ८१वीं पावन जयंती २७ मार्च, २०१५ ई० (शुक्रवार) को महर्षि मेँहीँ आश्रम कुप्पाघाट, भागलपुर में धूमधाम से मनायी जाएगी। इस पावन अवसर पर आप सभी सत्संग-प्रेमियों की उपस्थिति प्रार्थनीय है।

कार्यक्रम–६ बजे से प्रात:कालीन सत्संग, ८ बजे से पुष्पाञ्जलि, ११ बजे दिन से भंडारा, अपराह्न २ बजे से सत्संग एवं पूज्यपाद महर्षि हरिनन्दन परमहंसजी महाराज के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश (सत्संग-हॉल में)।

शान्ति-सन्देश के पाठकों एवं ग्राहकों से

कागज एवं मुद्रण उपकरणों के मूल्यों में अत्यधिक वृद्धि होने के बावजूद इस वर्ष भी 'शान्ति-संदेश' के शुल्क में वृद्धि नहीं की गयी है। पूर्ववत् वार्षिक शुल्क ६० (साठ) रुपये एवं पंद्रह वर्षों के लिए शुल्क ७०० (सात सौ) रुपये रखा गया है। सभी वार्षिक ग्राहकों का शुल्क मार्च, २०१५ ई० के अंक के साथ समाप्त हो जाएगा। आपकी सुविधा हेतु जनवरी अंक के साथ मनीऑर्डर फार्म भेज दिया गया है। श्रद्धालु सत्संगप्रेमी ग्राहकों एवं पाठकों से अनुरोध है कि अप्रैल, २०१५ ई० से मार्च, २०१६ ई० तक का वार्षिक एवं पन्द्रहवर्षीय शुल्क निम्न पते पर मनीऑर्डर द्वारा अथवा ड्राफ्ट से भेजें।

निवेदक :
अरुण कुमार अग्रवाल (महामंत्री)

शुल्क भेजने का पता : प्रबंधक, 'शान्ति-सन्देश प्रेस'
महर्षि मेँहीँ आश्रम कुप्पाघाट, भागलपुर-३ (बिहार)

संतमत-सत्संग का भव्य आयोजन

स्थान–उफरेल (मरंगा पूर्व), पूर्णियाँ   दिनांक–३० एवं ३१ मार्च, २०१५ ई०

इस पुनीत अवसर पर संतमत के वर्तमान आचार्य पूज्यपाद महर्षि हरिनन्दन परमहंसजी महाराज एवं अन्य साधु-महात्माओं तथा विद्वानों का पदार्पण होने जा रहा है। अतएव सभी धर्मावलम्बियों से निवेदन है कि अधिकाधिक संख्या में पधारकर संत-महात्माओं के दर्शन एवं प्रवचन से लाभ उठाएँ। सम्पर्क सूत्र–श्रीचन्द्रशेखर चौधरी (९४७३४६९२२२), श्रीशशिशेखर (सूरज) चौधरी, ९४७२१७९४७१; निवेदक–स्वागत समिति उफरेल (मरंगा पूर्व) तथा क्षेत्रीय सत्संगीगण

शान्ति-सन्देश

अखिल भारतीय संतमत-सत्संग का प्रमुख मासिक पत्र

वर्ष ६४ अंक ११

माघ-फाल्गुन २०७१ वि० सं०

फरवरी, २०१५ ई०

संस्थापक

महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज

सम्पादक एवं प्रकाशक

डॉ० स्वामी गुरु प्रसाद

मो०–09006806109

प्रेस प्रबन्धक

स्वामी स्वरूपानन्द

मो०–08603468101

श्रीसीताराम मंडल

मो०–07762994742

सहयोग राशि :	एक प्रति	६ रुपये
	वार्षिक	६० रुपये
	पंद्रहवर्षीय	७०० रुपये
विदेश के लिए :	वार्षिक	१० डॉलर
	पंद्रहवर्षीय	१०० डॉलर

सहयोग राशि भेजने का पता

प्रेस प्रबन्धक, 'शान्ति-सन्देश'
महर्षि मेँहीँ आश्रम कुप्पाघाट
भागलपुर, बिहार (भारत)
पिन–812003

महासभा कार्यालय–0641-2408183

ड्राफ्ट इस नाम से बनवाएँ–
Shanti Sandesh Patrika
('शान्ति-सन्देश' पत्रिका)

सूक्ति-कण

❖ वेदस्योपनिषत् सत्यं सत्यस्योपनिषद् दमः।
दमस्योपनिषन्मोक्ष एतत् सर्वानुशासनम्॥

वेदाध्ययन का सार है सत्यभाषण, सत्य-भाषण का सार है इन्द्रियसंयम और इन्द्रिय संयम का फल है मोक्ष। यही संपूर्ण शास्त्रों का उपदेश है।

❖ वाचो वेगं मनसः क्रोधवेगं
विधित्सावेगमुदरोपस्थवेगम्।
एतान वेगान् यो विषहेदुदीर्णांस्तं
मन्येऽहं ब्राह्मणं वै मुनिं च॥

जो वाणी का वेग, मन और क्रोध का वेग, तृष्णा का वेग तथा पेट और जननेन्द्रिय का वेग–इन सब प्रचंड वेगों को सह लेता है, उसी को मैं ब्रह्मवेत्ता और मुनि मानता हूँ।

❖ आक्रुश्यमानो नाक्रुश्येन्मन्युरेनं तितिक्षतः।
आक्रोष्टारं निर्दहति सुकृतं चास्य विन्दति॥

जो दूसरों के द्वारा गाली दी जाने पर भी बदले में उसे गाली नहीं देता, उस क्षमाशील मनुष्य का दबा हुआ क्रोध ही उस गाली देनेवाले को भस्म कर देता है और उसके पुण्य को भी ले लेता है।

❖ यस्य वाङ्मनसी गुप्ते सम्यक् प्रणिहिते सदा।
वेदास्तपश्च त्यागश्च स इदं सर्वमाप्नुयात्॥

जिसकी वाणी और मन सुरक्षित होकर सदा सब प्रकार से परमात्मा में लगे रहते हैं, वह वेदाध्ययन, तप और त्याग–इन सबके फल को पा लेता है।

❖ अव्याहृतं व्याहृताच्छ्रेय आहुः
सत्यं वदेद् व्याहृतं तद् द्वितीयम्।
प्रियं वदेद् व्याहृतं तत् तृतीयं
धर्मं वदेद् व्याहृतं तच्चतुर्थम्॥

व्यर्थ बोलने की अपेक्षा मौन रहना अच्छा बताया गया है। (यह वाणी की प्रथम विशेषता है) सत्य बोलना वाणी की दूसरी विशेषता है। प्रिय बोलना वाणी की तीसरी विशेषता है। धर्म सम्मत बोलना यह वाणी की चौथी विशेषता है।

–महाभारत, शान्तिपर्व

लगन से ज्ञान मिलता है, लगन के अभाव में ज्ञान लुप्त हो जाता है। –भगवान बुद्ध

संतवाणी

गुरु तेगबहादुरजी की वाणी

॥ मूल पद्य ॥

जामें भजनु राम को नाहीं।
तिह नर जनम अकारथ खोइउ इह राखहु मन माहीं॥
तीरथ करै बिरत पुनि राखै, नहिं मनुवा वसि जाको।
निहफल धरम ताहि तुम मानो साँचु कहत मैं याको॥
जैसे पाहन जल महि राखिउ भेदै नहिं तिहि पानी।
तैसे ही तुम ताहि पछानो भगतिहीन जो प्रानी॥
कलि में मुकति नाम ते पावत गुर इह भेद बतावै।
कहु नानक सोई नरु गरुआ जो प्रभ के गुन गावै॥

गुरु गोविन्द सिंहजी की वाणी

॥ मूल पद्य ॥

प्रानी। परम पुरुष प्रग लागो।
सोवत कहा मोह-निद्रा में, कबहुं सुचित ह्वै जागो॥
औरन कहा उपदेसत है पसु, तोहि प्रबोधन लागो।
संचत कहा परे बिसियन कहँ, कबहुँ बिषय रस त्यागो॥
केवल करम भरम से चीन्हहु, धरम करम अनुरागो।
संग्रह करो सदा सिमरन को, परम पाप तजि भागो॥
जातें दुःख पाप नहिं भेटै, काल जाल ते त्यागो।
जो सुख चाहो सदा सबन को, तो हरि के रस पागो॥

लोभ की पूर्ति कभी नहीं होती, इसलिए लोभ के साथ क्षोभ सदा रहता है।—समर्थ गुरु रामदास

परमाराध्य सन्त सद्‌गुरु महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज

प्रातःस्मरणीय अनन्त श्रीविभूषित परमाराध्य संत सद्‌गुरु महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज का यह प्रवचन सुलतानगंज, भागलपुर में दिनांक ९.९.१९६२ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग के शुभ अवसर पर हुआ था। श्रुतलेखक : महर्षि संतसेवी परमहंस

बन्दउँ गुरु पद-कंज, कृपासिन्धु नररूप हरि।
महामोह तमपुंज, जासु बचन रबिकर निकर॥

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

यहाँ के प्रेमियों ने मुझको सत्संग के निमित्त बुलाया है, इसलिए मैं पहले आपलोगों को सत्संग के बारे में कहूँगा। सत्संग में दो शब्द हैं–सत् और संग। सत् के संग को सत्संग कहते हैं। सत् उसको कहते हैं, जो अपनी सत्ता से हो, कभी परिवर्तित न हो और कभी नष्ट न हो। जिसकी निजी स्थिति हो, उसके संग को सत्संग कहते हैं, असल तो यह बात है। ऐसा पदार्थ जो अपनी सत्ता से रहता हो, जो किसी आधार पर आधेय होकर नहीं हो, जो कार्य-रूप नहीं हो, जिसमें परिवर्तन नहीं हो, ऐसा क्या पदार्थ होगा?

संसार के सभी पदार्थ बदलते हैं, सभी किसी-न-किसी आधार पर रहते हैं, सभी में विनाश का गुण है। अपनी देह को देखिए, पहाड़-पर्वत को देखिए, सभी आधार पर हैं। हम सभी पृथ्वी पर हैं और पृथ्वी भी आधार पर ही है। चाहे आप पौराणिक बातें लीजिए, तो कहेंगे कि शेषनाग पर है। यदि विज्ञान को लीजिए, तो यह सूर्य के आधार पर है। बिना आधार के कोई भी नहीं है। ये बिल्कुल-के-बिल्कुल बदलते हैं। कभी-न-कभी इसका नाश हो जाता है। बहुत दिनों के बाद ब्रह्मा भी नहीं रहते। ब्रह्मा के दिन में सृष्टि होती है और रात में विनाश। इसी तरह सृष्टि चली आ रही है। कबतक इस तरह बदलती रहेगी, ठिकाना नहीं। कोई कहते हैं कि जिससे यह सृष्टि होती है, वह भी नहीं रहेगी। सृष्टि प्रकृति से होती है। प्रकृति भी कभी-न-कभी लय हो जाएगी। कहते हैं कि जो जिससे उपजा है, वह उसी में समा जाएगा। सृष्टि में कोई भी अविनाशी नहीं है। अगर कोई ऐसा है, तो ईश्वर है। ईश्वर के अतिरिक्त और कोई ऐसा नहीं कि जिसमें परिवर्तन न हो और वह किसी आधार पर नहीं रहे।

ऐसा इसलिए कि संसार में देखने में आता है कि पहले कुछ, तब फिर कुछ। जैसे वृक्ष, फिर उसमें फल आदि। वैज्ञानिक ज्ञान में भी सृष्टि के लिए है कि पहले यह बना, पीछे वह बना और पौराणिक ज्ञान में भी इसी तरह है। इस तरह जो बनता-बिगड़ता है, वह ईश्वर

हर काम का एक वक्त होता है, वक्त पर काम करो। –सुकरात

नहीं। पहले सूर्य है बाद में पृथ्वी। यह सूर्य पृथ्वी के पहले से है। इस तरह सोचें कि पृथ्वी और सूर्य के पहले का भी कुछ होना चाहिए। सबसे पहले का कुछ नहीं मानने से सृष्टि का पता भी नहीं रहेगा। सबसे पहले का वह पदार्थ होगा, जिसके अतिरिक्त कोई अवकाश नहीं। यदि कोई अवकाश माना जाय, तो उसमें रहनेवाला पीछे होगा और अवकाश पहले। यह भी समझने योग्य है कि जिसके अतिरिक्त कोई अवकाश नहीं हो, वह कैसा होगा? सादि सान्त वा अनादि-अनन्त? वह अनादि-अनन्त है। सादि-सान्त कहने से उसके अतिरिक्त कुछ अवकाश मानना पड़ेगा। जो अनादि-अनंत होगा, वह अपरम्पार शक्ति-युक्त होगा। ईश्वर के बारे में यही कहने योग्य है कि जो आदि-अंत-रहित, अपरम्पार, शक्तियुक्त है, वही सत् है, वही ईश्वर है। इससे विशेष व्यापक और कुछ नहीं हो सकता। यही सत् है, इसका संग हो, इसको सत्संग कहते हैं। इतनी ऊँची बात को ख्याल में लावें, तो मन हैरान हो जाता है कि वह सत् कहाँ है और उसका संग कैसे होगा?

वह सत् सर्वव्यापी होने के कारण सबमें सर्वदा है। वह भले ही सबको जानता है; लेकिन सब उसको नहीं जानते। मनुष्य से ऊँचे रहनेवाले स्वरूपतः उसको पहचान नहीं सकते। जब कोई उस सत् के लिए ज्ञान कहता है, तब समझ में आता है; लेकिन उसकी प्रत्यक्षता नहीं होती। विश्वास नहीं होता कि उसका संग हमको होता है, यद्यपि वह सर्वव्यापी है। यदि प्रत्यक्ष हो जाए, तब बात ही क्या? सो होता नहीं है। प्रत्यक्ष नहीं जानने के कारण उसका संग हो रहा है, विश्वास नहीं होता। प्रत्यक्ष नहीं होने के कारण जिसको हम सत्संग कहते हैं, संसार में होने योग्य नहीं मालूम होता; लेकिन सर्वव्यापी को पहचान लें, तब सत्संग होगा। इसके बिना हमलोग जो यहाँ एकत्र हैं, यह सत्संग कैसा? यह सत्संग नहीं है, यह भी कहा नहीं जाता; क्योंकि उस सत् के विषय में हमलोग समझने-बूझने को एकत्र होते हैं, चर्चा करते हैं, इसलिए यह भी सत्संग है।

लोग कहेंगे, सत्संग से लाभ क्या होता है? किसी काम के करने से लाभ हो, तब उसमें प्रेम होता है, करने में मन लगता है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है कि सत्संग से क्या लाभ है? लोग ज्ञान, यश, सुगति, ऐश्वर्य और शीलता चाहते हैं; लेकिन झूठी शीलता नहीं, जैसा कि हमलोग कभी-कभी बरतते भी हैं। कबीर साहब ने कहा है–'मन में आन बगल में छूरी।' सत्यता और नम्रता से बरतने को शीलता कहते हैं।

कथा है कि एक बार जब इन्द्र का राज्य छिन गया था, तब उसने देवगुरु बृहस्पतिजी से उसकी पुनः प्राप्ति के लिए उपाय पूछा। सद्युक्ति बताने में बृहस्पतिजी को असमर्थ पा इन्द्र ने दैत्य गुरु शुक्राचार्य से जिज्ञासा की। शुक्राचार्य ने कहा कि तुम प्रह्लाद की सेवा करो और जब वह तुम्हारी सेवा से प्रसन्न होकर कुछ माँगने के लिए तुमसे कहे, तब तुम उनसे कहना कि आप अपनी शीलता मुझे दीजिए। शुक्राचार्य की युक्ति इन्द्र को भायी। उसने छद्म वेश में प्रह्लाद के दरबार में जाकर विविध सेवा करनी आरंभ कर दी। कुछ दिनों के पश्चात् इन्द्र की सेवा से प्रसन्न होकर एक दिन प्रह्लाद ने कहा कि तुम कुछ वर माँगो, जो तुम चाहते हो। इन्द्र ने कहा–'आप अपनी शीलता दीजिए।' प्रह्लाद समझ गए। उन्होंने कहा–'आप इन्द्र हैं। मेरे गुरु महाराजजी ने आपको सिखाया है। मैं अपनी शीलता तो आपको दूँगा ही, साथ ही आप अपना राज्य भी ले लीजिए।' गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं–

मति कीरति गति भूति भलाई।
जब जेहि जतन जहाँ जेहि पाई॥

सो जानब सत्संग प्रभाऊ।
लोकहु बेद न आन उपाऊ॥

सत्संग से क्या नहीं मिलता है? आप मनुष्य हैं, आपको जो मिलना चाहिए, सभी सत्संग से मिलते हैं। मनुष्य हैं, ज्ञान नहीं है तो किस काम का वह है? यश नहीं है, अयशी है, उसका जीवन किस काम का? मनुष्य-शरीरधारी जीव को ये पाँचो बातें चाहिए। सत्संग के बिना इसका मिलना नहीं हो सकता।

देवगुरु बृहस्पतिजी महाबुद्धिमान, ज्ञानवान थे। उनके पास इन्द्र गए; गोया सत्संग किया। शुक्राचार्य के पास इन्द्र गए, वह भी सत्संग हुआ। प्रह्लाद की सेवा में इन्द्र रहे, तो ऐश्वर्य भी लाभ हुआ। सत्संग से बढ़कर कुछ है, कहा नहीं जा सकता। हमलोग ईश्वर की चर्चा करते हैं, यह सत्संग है। महात्माओं का, संतों का संग भी सत्संग है। प्रह्लाद भी भक्त थे, उनका संग सत्संग हुआ। ऐसे महापुरुष नहीं मिलें, तब कैसे सत्संग हो? ग्रंथों में उन महापुरुषों का ज्ञान है, उनके ज्ञान का संग भी सत्संग है। दूर-दूर मित्र होते हैं, पत्र से समाचार जानते हैं। चिट्ठी आधी मुलाकात है।

संतों का ज्ञान उनकी ओर से उनके ग्रंथों के द्वारा हमको मिलता है, यह भी सत्संग है। इसलिए हमलोग संतों का कोई-न-कोई वचन अवश्य पाठ करते हैं। हमारे सत्संग का यह आधार है। कोई कोई बुद्धिमान कहते हैं कि किताब पढ़ने की क्या जरूरत है? जो तुम जानते हो, कहो। मैं कहता हूँ–गो० तुलसीदासजी आदि संतों के सामने मेरा ज्ञान तुच्छ है। उनका ज्ञान लेकर मैं कहता हूँ, तो इसमें क्या हानि है? आप विद्वान हुए हैं, कॉलेजों और विद्यालयों में दूसरे की किताब पढ़कर ही!

उत्तर भारत में भगवान बुद्ध के बाद कबीर साहब पूरब में, गुरु नानक साहब पश्चिम में हुए। काशी में कबीर साहब भी और गोस्वामी तुलसीदासजी भी–दोनों हुए। उत्तर भारत में सूरदास महाराज भी हुए हैं। ये सब संत ऐसे हुए हैं कि इनके प्रवचनों के द्वारा हमको सत्संग हुआ करता है। इसलिए सत्संग के वास्ते हमारे गुरु महाराज भी सद्ग्रंथों का सहारा लेते थे। हमारे गुरु का ज्ञान हमसे कितना अधिक था, ठिकाना नहीं। जब वे ग्रंथों का सहारा लेते थे और हमको भी आदेश दे गए, तब क्यों न पाठ किया जाय? अभी तुलसीकृत रामायण का पाठ हुआ, आपने सुना–

जीवनमुक्त ब्रह्म पर, चरित सुनहिं तजि ध्यान।
जे हरिकथा न करहिं रति, तिन्हके हिय पाषान॥

जो मुक्ति प्राप्त करें, वे मुक्त हैं। मुक्ति का अर्थ है–छूट जाना। किससे छूट जाना? बंधन हो, तो उससे छूट जाना मुक्ति है। बंधन क्या है? किसको है? तो कहा जाता है कि जीवात्मा को बंधन है। शरीर के बंधन से छूट जाना मुक्ति है। जीवात्मा शरीर नहीं है। बालि मारा गया। उसकी स्त्री तारा रोती थी, तब श्रीराम ने कहा–

छिति जल पावक गगन समीरा।
पंच रचित अति अधम सरीरा॥
प्रगट सो तनु तव आगे सोवा।
जीव नित्य तुम केहि लगि रोवा॥

भगवान श्रीकृष्ण ने महाभारत युद्ध में अर्जुन से कहा था कि तुम किसको मारोगे? कुरुक्षेत्र के मैदान में जितने लड़ने आए हैं, ये पहले नहीं थे और पीछे नहीं रहेंगे, ऐसी बात नहीं। शरीर बदलता है, आत्मा अविनाशी है। इस शरीर में जीवात्मा है और शरीर के बंधन में है। शरीर के बंधन में रहने से क्या होता है, यह सबको मालूम है। कभी सुख, कभी दुःख दिन-रात की तरह आता-जाता रहता है। कभी लगभग चौदह घंटे की रात और कभी चौदह घंटे का

विनय गुणों की खान है। –नारद

दिन होता है; लेकिन बराबर न रात रहती है, न दिन रहता है। उसी तरह दुःख कभी अधिक, कभी कम। कभी पाण्डव बड़े सुख में थे और कभी भीख भी माँगी, कभी नौकरी भी की। नौकरी में युधिष्ठिर ने भी मार खायी और द्रौपदी ने भी। महारानी सीता भी रोयीं। एक बार कौन कहे, दो-दो बार। सूरदासजी ने कहा–

ताते सेइये यदुराई ।
सम्पति विपति विपति सों सम्पति देह धरे को यहै सुभाई ॥
तरुवर फूलै फलै परिहरै अपने कालहिं पाई ।
सरवर नीर भरै पुनि उमड़ै सूखे खेह उड़ाई ॥
द्वितीय चन्द्र बाढ़त ही बाढ़े घटत घटत घटि जाई ।
सूरदास सम्पदा आपदा जिनि कोऊ पतिआई ॥

सम्पदा व आपदा, किसी का विश्वास नहीं करो कि यह सदा रहेगी। यह तो प्रत्यक्ष अपने देश में हुआ। अंग्रेज बात-की-बात में भाग गया। जमींदारों की जमींदारी चली गई। बहुत-बहुत जमीन भी अब किसी के पास नहीं है। कभी भारत बड़ा धनी था और अब भारत ऋणी है; लेकिन सदा ऋणी रहेगा, ऐसा नहीं।

इस शरीर में कभी सुख, कभी दुःख होता है। सम्पत्ति में बाहर में तो अच्छा लगता है; लेकिन अंतर जलता रहता है। गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है–

द्रव्यहीन दुख लहइ दुसह अति, सुख सपनेहु नहिं पाये ।
उभय प्रकार प्रेत पावक ज्यों, धन दुख प्रद स्रुति गाये ॥

धन होने और नहीं होने, दोनों तरहों में दुःख है। धन नहीं है, तो जलते हैं और धन हो गया, तो जैसे भूत चढ़ गया, चैन नहीं लेने देता। जो सब राष्ट्र वा एक ही राष्ट्र बड़ा धनवान है, तो चुपचाप रहे; लेकिन चुपचाप रहता कहाँ है? उसको भूत लगा है, अपने ऐश्वर्य को बढ़ाने के लिए। भारत कहता है कि हमारे पास धन नहीं है, इससे दुःखी हैं और अमेरिका कहता है–'हमारे पास अमित धन है, धन के भोगों से बचाओ।' वह भोग के मारे पागल हो रहा है। इस तरह धन सुख देनेवाला नहीं है। सुख कहने मात्र का है, यथार्थ में नहीं। जो-जो मन और इन्द्रियों को सुहाता है, वह सुख और जो मन-इन्द्रियों को नहीं सुहाता है, वह दुःख है। इस सुख में मन-इन्द्रियों को तृप्ति नहीं और दुःख, अशान्ति रहती है। इसलिए शरीर से छूटो। शरीर से छूटने को मुक्ति कहते हैं। आप कहेंगे कि शरीर से छूटना तो मामूली बात है। जहर खा लो, छूट जाय। अथवा सब्र करके रहो, तो कुछ दिनों में १०, २०, ५० वा १०० वर्षों में शरीर छूट जाएगा। तो यह बात कहनेवाले केवल एक शरीर को ही जानते हैं। इसके अंदर सूक्ष्म (लिंग), कारण और महाकारण शरीर भी हैं। कोई-कोई तीन ही शरीर गिनाते हैं। हमलोग चार शरीर पढ़े हैं और विचार में भी आता है। ये चारो शरीर छूट जाएँ, तब मुक्ति है। साधारण मृत्यु में केवल एक शरीर छूटता है।

बहुत पुराने समय से हमलोगों के घर में कर्मकाण्ड होता है, जिसमें एक कर्मकाण्ड को श्राद्ध-क्रिया कहते हैं। श्रद्धापूर्वक जो क्रिया की जाती है, उसको श्राद्ध-क्रिया कहते हैं। जैसे एक आदमी अपने पुत्र-पौत्रों के साथ था। उस बूढ़े का शरीर छूट गया, उसको चिता पर जलाया और उसकी श्राद्ध-क्रिया की। श्राद्ध-क्रिया करने में एक श्रद्धा है कि दादाजी का शरीर छूट गया है, वे कहीं-न-कहीं हैं। श्राद्ध-क्रिया यह वेदान्त-ज्ञान बताती है कि शरीर छूटता है, आत्मा रहती है। और बात में सन्देह भी; लेकिन इस बात में कोई सन्देह नहीं। शरीर छूटने पर देह से देह छूटती है।

सावित्री और सत्यवान की कथा से सीखो कि सावित्री में पातिव्रत्य के कारण तेज था। आज भी जो स्त्री पतिव्रता होगी, उसको भी तेज होगा। इसलिए स्त्रियों को पूर्ण पतिव्रता होना चाहिए। पुरुष को चाहिए कि भगवान श्रीराम की तरह एक पत्नीव्रती बनें। आज हमारे

वक्त के मार से कोई नहीं बचा है। –भर्तृहरि

देश में इसकी बड़ी कमी है, जिस कारण कमजोर बच्चे होते हैं। देश में सभी स्त्रियाँ पतिव्रता हों और सभी पुरुष एकपत्नीव्रत धर्म का पालन करें, तो देश में अच्छी संतान होगी, देश का कल्याण होगा। कबीर साहब ने कहा–

मरिये तो मरि जाइये, छूटि पड़ै जंजार ।
ऐसी मरनी को मरै, दिन में सौ सौ बार ॥
जा मरने से जग डरै, मेरे मन आनन्द ।
कब मरिहौं कब पाइहौं, पूरण परमानन्द ॥

इसी की प्राप्ति के लिए श्रीराम ने प्रजा को उपदेश दिया। संसार के सभी सुख लोगों को प्राप्त थे; लेकिन शरीर छूटने के बाद भी वे सुखी रहें, इसलिए श्रीराम ने प्रजा को सबसे पहली बात जो कही, सो यह कि–

बड़े भाग मानुष तनु पावा ।
सुर दुर्लभ सब ग्रथहिं गावा॥

राजा का कर्तव्य होता है कि जहाँ प्रजा के सुख के लिए कार्य करे, तो उसके ज्ञान को बढ़ाने का यत्न भी करे। श्रीराम ने कहा–

बड़े भाग मानुष तनु पावा ।
सुर दुर्लभ सब ग्रथहिं गावा ॥
साधन धाम मोक्ष कर द्वारा ।
पाइ न जेहि परलोक सँवारा ॥
सो परत्र दुःख पावइ, सिर धुनि धुनि पछताय ।
कालहिं कर्महिं ईश्वरहिं, मिथ्या दोष लगाय ॥
एहि तन कर फल विषय न भाई।
स्वर्गउ स्वल्प अन्त दुखदाई ॥
नरतन पाइ विषय मन देहीं।
पलटि सुधा ते सठ विष लेहीं ॥
ताहि कबहुँ भल कहहिं न कोई।
गुंजा ग्रहइ परसमनि खोई ॥
आकर चारि लाख चौरासी ।
जोनि भ्रमत यह जीव अविनासी ॥
फिरत सदा माया कर प्रेरा ।
काल कर्म सुभाव गुन घेरा ॥
कबहुँक करि करुणा नर देहीं ।
देत इस बिनु हेतु सनेही ॥
नर तन भव वारिधि कहँ बेरो।
सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो ॥
करन धार सदगुरु दृढ़ नावा।
दुर्लभ साज सुलभ करि पावा ॥
जो न तरइ भव सागर, नर समाज अस पाय ।
सो कृत निन्दक मंद मति, आतमहन गति जाय ॥

परलोक दो प्रकार के होते हैं–एक स्वर्ग-नरक आवागमनवाला, दूसरा वह कि मुक्ति मिल गई, फिर संसार में लौटकर नहीं आता है। ईश्वर की कृपा नहीं है, यह नास्तिकता की बात है। प्रारब्ध बनाया हुआ तुम्हारा है, आज भी जैसा चाहो, बना सकते हो। समय तुमको शुभ कर्म करने से मना नहीं करता। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द; इन पंच विषयों को लोग भोगते रहते हैं। श्रीराम कहते हैं–यह मनुष्य-शरीर का काम नहीं। स्वर्ग का सुख भी थोड़ा ही है और अंत में दुःख देनेवाला है। अर्थ यह हुआ कि 'नर तन कर फल निर्विषय भाई'। इन्द्रिय-ज्ञान से परे का ज्ञान ग्रहण करने के लिए मनुष्य का शरीर है। विषयातीत मोक्ष के लिए श्रीराम ने उपदेश दिया।

अच्छी नाव हो और अच्छी हवा भी हो; लेकिन खेवनेवाला नहीं हो, तो काम नहीं चलेगा। मनुष्य-शरीर नाव है, ईश्वर-कृपा अनुकूल वायु है और खेवनेवाला सद्गुरु हैं। सद्गुरु उसको कहते हैं, जो सद्ज्ञान जाने; उस ज्ञान के अनुकूल रहे और दूसरों को सद्ज्ञान का उपदेश दे। जो मनुष्य भवसागर पार होने के ऐसे साज-सामानों को पाकर भवसागर पार नहीं होता है, वह कृतघ्न, नीच बुद्धि आत्महिंसक की गति में जाता है। इसीलिए लोगों को ईश्वर की भक्ति करनी चाहिए, जिससे कि मुक्ति मिले और निर्विषय तत्त्व की प्राप्ति हो। ❋

महर्षि मेँहीँ के अनमोल वचन

ध्यान करो तथा सत्संग करो

हमलोगों को गुरु महाराज का उपदेश है–'ध्यान करो तथा सत्संग करो।' अर्थात् योग एवं ज्ञान दोनों करो। मेरे पास गुरु महाराज की बहुत-सी चिट्ठियाँ हैं। एक चिट्ठी में लिखते हैं–'रोजाना अभ्यास करो, चाहे कुछ देखो या न देखो।' अभ्यास के समय देखते जाओ, चाहे कुछ दृश्य देखने में आवे या नहीं। बाबा साहब कहते थे–"जिस प्रकार लाह से लपेटी हुई लकड़ी को अग्नि के तेज में रखो, तो पिघलते-पिघलते लाह गिर जाएगी और केवल लकड़ी रह जाएगी, उसी तरह ध्याना-भ्यास से सब आवरण उतर जाएँगे और तुम अकेले रह जाओगे।"

अध्यात्म-धर्म में सब मिल जाओ

सब सत्य-सत्य रहो, तो सुखमय संसार हो जाएगा। यह बहुत बढ़िया ज्ञान है। सत्य ही धर्म का मूल है, सबको एक साथ धर्म बाँधता है; क्योंकि इसकी जड़ में सत्य है। वह एक धर्म कौन सा है? अध्यात्म-धर्म। अध्यात्म-धर्म में सब मिल जाओ। चाहे वैदिक, ईसाई, इस्लाम कोई होओ। नाम चाहे कुछ दे दो। अध्यात्म-धर्म कहो वा और कुछ कहो, हमलोग संतमत कहते हैं। सभी संतों का नाम लेते हैं, यही संतमत है। सारे संसार में सबको एक करके रखने के लिए संतमत है।

नित्य भजन अवश्य करें

देह-त्याग के समय चित्त में जो-जो भावनाएँ जीव करता है, वही-वही वह होता है, यही जन्म का कारण है। जीवन-भर जो अपने मन में सोचते हैं, वही भावना अंत समय में याद आवे, यह संभव है। जन्म-भर में कभी जो काम नहीं किया अथवा कभी-कभी किया, वह अंत समय याद आवे, संभव नहीं। इसलिए नित्य भजन करें। सब कामों को छोड़कर तथा सब कामों को करते हुए–दोनों ढंग से भजन करें, तो अंत समय में अवश्य याद आवेगा तथा अपना परम कल्याण होगा।

त्रयकाल सन्ध्या

सत्संग-ध्यान सबको नित करना चाहिए। ब्रह्ममुहूर्त में उठना चाहिए। भजन करना चाहिए। दिन में स्नान के बाद को और सायंकाल संध्या समय भजन करो। रात में सोते समय भजन करते हुए सो जाय, तो बुरा स्वप्न नहीं होगा। यही त्रयकाल संध्या है। दिन में सब काम करते हुए अपने मन को जप-ध्यान में लगाते हुए रहना चाहिए।

भजन में आज-कल मत करो

संसार में अपने आचरण को सँभालकर चलो। ईश्वर के भजन में पाप-भाव मन में रखने से भजन नहीं बनता। दुनिया में कमा-खाकर रहने में लोग पाप-पुण्य पर नहीं सोचते। इसका विचार नहीं करनेवाले को आगे दुःख भोगना पड़ता है। ईश्वर के भजन में ऐसी बात नहीं। उसमें पाप से छूटना पड़ता है। इसलिए ईश्वर का भजन करो। भजन में आज-कल मत करो। संत कबीर साहब ने कहा है– 'आज कहै मैं काल्ह भजूंगा, काल्ह कहै फिर काल।
आज कल के करत ही, औसर जासी चाल॥'

मन को वश में करो, दुनिया तुम्हारे वश में रहेगी। –वशिष्ठ

प्रवचन-पीयूष

पूज्यपाद महर्षि संतसेवी परमहंस

महर्षि संतसेवी परमहंसजी महाराज का यह प्रवचन भागलपुर विश्वविद्यालय के प्रांगण में दिनांक १.१.१९८९ ई० के सत्संग में हुआ था।   प्रेषक : सम्पादक

मंगल मूरति सतगुरू, मिलवैं सर्वाधार। मंगलमय मंगलकरण, विनवौं बारम्बार ॥
धन्य धन्य सद्गुरु सुखद, महिमा कही न जाय। जो कुछ कहूँ तुम्हरी कृपा, मोतें कछु न बसाय ॥

आदरणीय सज्जनवृन्द तथा आदरणीया माताओ एवं भक्तिमती बहनो!

जिस फाटक से हमलोग प्रवेश करते हैं, वहाँ पर लिखा हुआ है, यह संतमत का सत्संग है। संतमत के संबंध में गत कल संध्याकाल कह चुका हूँ। आज अभी के सत्संग के संबंध में सुनिये। सत्संग में दो शब्द है, सत् और संग। सत् क्या है? भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीगीता में बतलाया है–

'नासतो विद्यते भावा नाभावो विद्यते सतः।'

अर्थात् जो असत् है, उसका अस्तित्व नहीं है और जो सत् है, उसका कभी अभाव नहीं होता। जिज्ञासा होती है–यह सत् और असत् क्या है? जिसको सत् कहते हैं–वह था, है और रहेगा अर्थात् त्रयकाल अबाधित तत्त्व को सत् कहते हैं। जो असत् है, वह हमलोगों को इन्द्रियगोचर है, वस्तुतः उसकी स्थिति नहीं है। जो कुछ भी दीख पड़ता है, सभी भासमान है, नाशवान है। जो कुछ इन्द्रियग्राह्य है, सभी चीजें विनाशशील है। संत कबीर साहब के शब्दों में हम कह सकेंगे–

अखंड साहिब का नाम है, और सब खण्ड है ।
खण्डित मेरु सुमेरु, खण्ड ब्रह्मण्ड है ॥

वह परम प्रभु परमात्मा और उसका नाम ही अखण्ड है, अनाशी है, अविनाशी है। उनके अतिरिक्त और जितने जो कुछ पिंड-ब्रह्मांडादि हैं, सबके-सब नाशवान हैं, विनाशी हैं। जो संसार हम बाहर देख रहे हैं, उसी का छोटा रूप यह शरीर है। जितने तत्त्वों से यह संसार बना हुआ है, उतने ही तत्त्वों से यह शरीर बना हुआ है अर्थात् पाँच तत्त्व इस संसार में हैं, उसी तरह इस शरीर में भी वे ही पाँच तत्त्व हैं। (क्षिति, जल, पावक, गगन और समीर) बाह्य संसार में भी तीन गुण काम करते हैं। तीन गुण–रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुण अर्थात् उत्पादक शक्ति, पालक शक्ति और विनाशक शक्ति। संसार के जितने स्तर हैं, इस शरीर के भी उतने ही स्तर हैं। शरीर के जिस स्तर पर जब हम रहते हैं, संसार के भी उसी स्तर पर तब हम रहते हैं। शरीर के जिस स्तर को जब हम छोड़ते हैं, संसार के भी उसी स्तर को तब हम छोड़ते हैं। इस दृष्टि से यदि हम शरीर के सब स्तरों को पार कर जाएँ, तो संसार के भी सभी स्तरों को पार कर जाएँगे।

विचारणीय विषय यह है कि शरीर नाशवान है। जिस तरह इस शरीर का शरीर पर के वस्त्र से संबंध है, उसी तरह शरीरस्थ जीवात्मा का इस शरीर से संबंध है। जबसे हमलोगों ने

मनुष्य के गुण और अवगुण उसकी वाणी से जाने जा सकते हैं। –शेख सादी

जन्म धारण किया अर्थात् जबसे यह शरीर हमें मिला है, अबतक हमारी जितनी उम्र हो गयी, अबतक कितने कपड़े पहने हैं, कितने कपड़े फटे हैं, याद है किसी को? किसी को याद नहीं। अब भी शरीर का जीवन-काल जितना बाकी है, उसमें भी कितने कपड़े पहनेंगे, कितने फटेंगे, ठिकाना नहीं। उसी तरह एक जीव के जीवनकाल में कितने शरीर होते हैं और नष्ट होते चले जाते हैं, ठिकाना नहीं। जबसे सृष्टि है, जबसे सृष्टि में हैं अर्थात् जीवात्मा है, इसने कितने शरीरों को पहना है, कितने शरीरों को छोड़ा है, किसी को याद है? किसी को नहीं। अब भी जबतक यह जीवात्मा परमात्मा को प्राप्त कर ले, न मालूम कितने शरीरों को धारण करेगा और छोड़ेगा। भगवान श्रीकृष्ण श्रीमद्भगवद्गीता अ० २ श्लोक २२ में कहते हैं–

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णातिनरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्य-
न्यानि संयाति नवानि देही॥"

अर्थात् जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नये वस्त्रों को ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरों को त्यागकर दूसरे नये शरीर को धारण करता है।

जरा सोचकर देखिये। अभी हमारे शरीर पर जो वस्त्र हैं, ये कैसे हैं? हमारी जैसी कमाई है यानी कमाई के अनुसार हमारे शरीर पर वस्त्र है? यदि भविष्य में कमाई अच्छी होगी, तो इससे भी अच्छे वस्त्र पहन सकते हैं। अगर घाटे की ओर चले गये, तो इससे कम कीमत के कपड़े पहनेंगे। उसी तरह चौरासी लाख योनियों में घूमते-घूमते, भटकते-भटकते यह सुन्दर मानव शरीर मिला है यानी यह सुन्दर कपड़ा मिला है। गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज ने अपनी प्रजा को उपदेश दिया था–

आकर चारि लच्छ चौरासी।
जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी॥
फिरत सदा माया कर प्रेरा।
काल कर्म सुभाव गुन घेरा॥
कबहुँक करि करुना नर देही।
देत ईस बिनु हेतु सनेही॥"

अकारण ही स्नेह करनेवाले ईश्वर ने हमको मनुष्य का शरीर दे दिया है। आज तो कृपा करके प्रभु ने हमको मनुष्य का शरीर दे दिया है। अगर हमारी अच्छी कमाई रही अर्थात् हमने भगवद्भजन किया, तब तो इससे भी अच्छा शरीर हमको मिलेगा। अब हमारी कमाई अच्छी नहीं रही अर्थात् भगवद्भजन नहीं किया, तो फिर संत कबीर साहब की वाणी चरितार्थ होगी–

कहै कबीर चेत अजहुँ नहिं, फिर चौरासी जाई।
पाय जनम कूकर सूकर को, भोगेगा दुख भाई॥

वह कूकर-सूकर शरीर भी मिलने को तैयार है। जैसे एक शरीर पर विविध कपड़े पहनते और फटते हैं, उसी तरह एक जीव के जीवनकाल में विविध शरीर होते और नष्ट होते हैं। लेकिन हम स्वयं–

ईश्वर अंश जीव अविनासी।
चेतन अमल सहज सुख रासी॥

जिसका अंश अजर, अमर, अविनाशी है, उसका अंश कैसा होगा? वह भी तो अजर, अमर, अविनाशी होगा। उसका भी कभी विनाश नहीं होता है। उस अविनाशी परमात्मा से अविनाशी जीवात्मा का संग कर दीजिए। यह भी सत् है, वह भी सत् है। इस सत् का उस सत् से मिला दीजिए, यह असली सत्संग हो जाएगा। (श्रोतागण की ओर से श्रीसद्गुरु महाराज की जय-ध्वनि)

हाथरस-निवासी संत तुलसी साहब ने लिखा है–

"सत सुरत समझि सिहार साधौ,
निरखि नित नैनन रहौ।"

इस सत्संग से उस सत् से संग होना सर्वोच्च श्रेणी का सत्संग है। लेकिन लोग जो पढ़ते हैं–प्रथम श्रेणी, द्वितीय श्रेणी, तृतीय श्रेणी, क्रम-क्रम से बढ़ते जाते हैं। उसी तरह से वह तो सर्वोच्च श्रेणी है, पर उससे निम्न श्रेणी पहले और उसके बाद भी पहले निम्न श्रेणी चाहिए। तब क्रम-क्रम से उठेंगे। तो वह प्रथम श्रेणी का सर्वोच्च सत्संग है, वह कैसे होगा? किन्तु यह सत्संग सर्वप्रथम सुलभ नहीं है। सुलभ क्या है? जिन्होंने अपने जीवात्मा को परमात्मा से मिलाया है, वे संत् जन हैं–सज्जन हैं। ऐसे सज्जन का संग करें, यह द्वितीय श्रेणी का सत्संग है। यह द्वितीय श्रेणी का सत्संग सुलभ नहीं है; क्योंकि संतों की पहचान बहुत कठिन है। आज हम जिनकी बड़ाई सुनते हैं, आगे चलकर कल उनकी ही कुछ और सुनने लग जाते हैं। कुछ दिन पहले एक अखबार निकला था, उसमें आजकल के बहुत-से भगवानों के चित्र बने थे और नीचे लिखा हुआ था–हे भगवान! कितने भगवान्!

आज जिनको हम संत-महात्मा कहकर उनके चरणों में सिर टेकते हैं, कल सुनने में आता है कि उनमें यह गंदगी है, तो हमारा विश्वास डगमगा जाता है। फिर वैसे संतों की खोज हम कहाँ करें? संसार में ऐसे संत नहीं हैं, ऐसी बात नहीं है; लेकिन हमारे पास कोई मीटर नहीं है कि हम जाँच करके देख लें, ये ठीक संत हैं या नहीं? कोई मैट्रिक पास एम०ए० पास का इन्टरव्यू लेगा, क्या यह संभव है। एम०ए० पास मैट्रिक पास का इन्टरव्यू ले सकता है; लेकिन मैट्रिक पास का इन्टरव्यू नहीं ले सकता। उसी तरह हमारी जो अध्ययन- मनन की शक्ति है और जिन्होंने साधना की है, उनकी जो अनुभूति शक्ति है, हम कैसे जान सकते हैं? उनकी साधना-शक्ति के मापदंड को हम कैसे नाप सकते हैं? इस ताल-तलैया में जिस लग्गी से हम नाव खेते हैं, उसी लग्गी से समुद्र से जहाज को खेना क्या संभव है? कभी हो नहीं सकता।

साधु-संतों की पहचान सामान्य बात नहीं है। और तो और, हम अपने संगी-साथी की पहचान नहीं कर सकते, जिनके साथ हम २४ घंटे रहते हैं। वर्षों से जो नौकर हमारे पास रह रहा है, उसकी पहचान हम नहीं कर सकते हैं। चाबी दे देते हैं, कहते हैं–इतने रुपये ले आओ, गिनकर इतने रुपये तिजौरी में रख दो। एक दिन वही नौकर रुपये लेकर चम्पत हो जाता है। तब हम कहते हैं–इतना विश्वासी नौकर था, हम तो कभी विश्वास नहीं कर सकते थे कि हमारे साथ वह ऐसा नहीं कर सकता है। जब एक नौकर को हम नहीं पहचान सकते हैं, जो हमारे अधीन २४ घंटे रहता है, तब जो एक संत हैं, महात्मा हैं, वे कहाँ तक पहुँचे हुए हैं, उनकी गति कहाँ तक है, उसकी पहचान हम कैसे कर सकते हैं! ऐसी परिस्थिति में स्वाभाविक प्रश्नोदय होता है, सच्चे संत की पहचान कैसे की जाए? यदि उनकी पहचान नहीं हो, तो उनके अभाव में सत्संग कैसे हो? उत्तर में निवेदन है–जिन संतों पर आज तक किसी ने ऊँगली नहीं उठाई है, जो सर्वमान्य है अर्थात् जिनकी संतों की दृष्टि से पूर्व से अबतक सभी देखते चले आ रहे हैं, भले ही वे संत आज इस जगती-तल पर नहीं हों; किन्तु उन संतों की वाणियाँ तो हैं, वे सत् वाणी है। उन संतों की

सत् वाणियों का संग करें, यह भी सत्संग है। यह तीसरी श्रेणी का सत्संग है। अगर सच्चे संत मिल जाएँ, तब तो कहना ही क्या, हमारा अहोभाग्य है। महोपनिषद् में लिखा है–

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे॥"

अर्थ–परे से परे को (परमात्मा को) देखने पर हृदय की ग्रन्थि खुल जाती है, सभी संशय छिन्न हो जाते हैं और सभी कर्म नष्ट हो जाते हैं।

इन विभूतियों से विभूषित होते हैं–संत। उपनिषद् में आया–जिनके हृदय की ग्रंथि विच्छिन्न हो गयी है। यह हृदय की ग्रंथि कौन-सी है? इस संदर्भ में गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज ने रामचरितमानस में कहा है–

जड़ चेतन ग्रंथि पड़ि गई।
यद्यपि मृषा छूटत कठिनई॥

इस जड़-चेतन की ग्रंथि को जिन्होंने खोल डाला है। जड़ और चेतन की ग्रंथि को खोलने से क्या मिलता है? यदि किन्हीं ने खोल ही डाला, तो उनको क्या मिला।

हमलोग जब गाँठ देते हैं, तो गाँठ में कुछ रखते हैं। जब गाँठ खोलते हैं, उसमें जो कुछ माल रहता है, वह मिलता है। क्या माल मिलता है? और जो पूछता हूँ, उसका अपने विचारानुकूल उत्तर दीजिए।

'आप सुबुद्धि चाहते हैं या कुबुद्धि?' आपलोगों ने एक स्वर में कहा–सुबुद्धि चाहते हैं। गुरुदेव–जबतक आप संसार में जीवित रहें, खायें-पियें, ऐश-आराम करें, मौज से रहें और शरीर छूटने के बाद आप शुभ गति चाहते हैं या दुर्गति? उनलोगों ने कहा, 'शुभ गति चाहते हैं।' संसार में आपलोग ऐश्वर्यवान होकर रहना चाहते हैं या दीन-हीन, कंगाल होकर।' उनलोगों ने कहा–'ऐश्वर्यवान होकर रहना चाहते हैं।' गुरुदेव ने पुनः पूछने की कृपा की, 'संसार में आप अपनी भलाई चाहते हैं या बुराई?' उनलोगों ने कहा, 'भलाई।' गुरुदेव बोले, 'देखिये गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज ने लिख दिया है–

मति कीरति गति भूति भलाई।
जब जेहि जतन जहाँ जेहि पाई॥
सो जानब सत्संग प्रभाऊ।
लोकहु वेद न आन उपाऊ॥

अगर ये पाँचो चीजें मिल जाएँ, तो और छठी क्या चीज चाहिए? उनलोगों ने कहा–'महाराज! तब तो सब पूरा हो गया।' गुरुदेव बोले–'तो समझिये, सत्संग से अच्छी-अच्छी चीजें मिलती हैं। इसलिए सबको सत्संग करना चाहिए।' ☐

सत्कर्मों से ही महान बनेंगे

बुरे कर्मों का फल कभी शुभ नहीं हो सकता। बुरे कर्म करने पर पीड़ा और क्लेश अवश्य भोगने पड़ेंगे। खान-पान, रहन-सहन ही अच्छा रखने से तुम अच्छे एवं महान नहीं बन सकते। महान तो तुम अपने सत् कर्मों से बनोगे। मनुष्य का जन्म दुर्लभ है। उसका एक-एक क्षण अमूल्य है। इसे सोचकर अगर कोई चलेगा, तो कभी गलती नहीं करेगा। सांसारिक भोग-विलास रूपी भूमि में बोए हुए बीज से आध्यात्मिक विकास रूपी पौधा कभी भी पनप नहीं सकता। कितने आश्चर्य की बात है कि स्वर्ग आपके भीतर विद्यमान है, तब भी आप सुख को विषयों में, गली-गली में खोजते फिरते हैं और तो और उस वस्तु को अपने बाहर, इन्द्रियों के विषयों में ढूँढ़ते फिरते हैं। ब्रह्म वह है, जो मन से नहीं जाना जा सकता है और न ही चक्षु आदि इन्द्रियों से जाना जाता है; लेकिन ब्रह्म वह है, जो मन-चक्षु आदि को अपने काम में लगाता है। यदि जीवन में बुद्धिमत्ता की कोई बात है, तो वह एकाग्रता है। यदि कोई बुरी बात है, तो अपनी शक्तियों को बिखेर देना। बहुत विषयों का चिन्तन हानिकारक है।

–स्वामी रामतीर्थ

कायर मृत्यु के पूर्व अनेक बार मरते हैं, किन्तु वीर एक ही बार मरते हैं। –शेक्सपियर

महर्षि हरिनन्दन परमहंस

गुरु-वचन

संतमत के वर्तमान आचार्य पूज्यपाद महर्षि हरिनन्दन परमहंसजी महाराज का यह प्रवचन दिनांक १६.१२.२०१४ ई०, स्थान-मलहरिया, जिला पूर्णियाँ में अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था। प्रेषक–डॉ० स्वामी गुरु प्रसाद

बन्दउँ गुरु पद-कंज, कृपासिन्धु नररूप हरि।
महामोह तमपुंज, जासु बचन रबिकर निकर॥

आदरणीया माताओ एवं बहनो!

यह सत्संग संतों के ज्ञान को समझाने के लिए है, इसकी आवश्यकता के संबंध में महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज ने कहा है कि–

संतमता बिनु गति नहीं, सुनो सकल दे कान।
जौं चाहो उद्धार को, बनो संत संतान॥

जबतक हम संतों के ज्ञान को नहीं अपनायेंगे, तबतक हमारा कल्याण नहीं होगा। हमलोग अपना कल्याण चाहते हैं, तो संतों के ज्ञान को अपनाना पड़ेगा।

संत कहते हैं कि लोगो! तुम किस स्थिति में हो, अपनी स्थिति पर विचार करो। जीव को अपनी वर्त्तमान स्थिति का ज्ञान नहीं है। अपनी इस स्थिति से छूटने का उपाय भी वह नहीं जानता। अज्ञान में रहने के कारण वह झूठे सुख को सुख समझता है; लेकिन झूठे सुख में रहकर शान्ति प्राप्त नहीं होती। परम भक्तिन सहजोबाई कहती है–

जैसे सँड़सी लौह की, छिन पानी छिन आग।

जैसे लोहे की सँड़सी को कभी आग में जाना पड़ता है, तो कभी पानी में। सँड़सी एक स्थिति में नहीं रह पाती। ठीक वैसा ही हमलोगों का जीवन है–कभी दुःख होता है, तो कभी सुख। यह सबके जीवन में होता है। सूरदासजी महाराज ने कहा है–

सम्पति विपति विपति सों सम्पति,
देह धरे को यहै सुभाई।

जो देहधारी है, उसके जीवन में ऐसा होता ही रहता है–दुःख-सुख और हर्ष-शोक। इस स्थिति में कोई रहना नहीं चाहता है। सब-के-सब सुख में ही रहना चाहते हैं; परन्तु सुख की स्थिति सदा रह नहीं पाती।

कारण सन्त लोग बतलाते हैं कि 'लोगो! तुम्हारा संग हो गया है असत्य से। असत्य के संग के कारण ही तुम दुःख की स्थिति में हो। असत्य में तुम दुःखस्वरूप हो गये हो।' हमलोग कौन हैं? शरीर हम नहीं हैं, शरीर में हम हैं। शरीर में 'हम' कौन हैं? जीवात्मा। यह जीवात्मा कौन है?

इस प्रश्न के उत्तर में गो० तुलसीदासजी ने लिखा है–'ईश्वर अंश जीव अविनाशी'। यह जीव परमात्मा का अंश है। जीव का कभी नाश नहीं होता। यह जीव अविनाशी है, यह चेतन है; मल-रहित और सहज सुख की राशि है। 'सहज सुख की राशि' तो कह दिया; लेकिन हमलोग अपने को दुःख में पाते हैं। कभी दैहिक ताप होता है, कभी दैविक ताप और कभी भौतिक ताप। अनेक तरह से हमलोग दुःखों में पड़े हुए हैं।

इसका कारण यह है कि ईश्वर का अंश होते हुए भी यह जीव शरीर और संसार के बंधन में बँध गया है। इस शरीर और

वास्तविक सौंदर्य हृदय की पवित्रता में है। –महात्मा गाँधी

संसार-रूपी कैदखाने में पड़ जाने के कारण हमें दुःख का बोध होता है और इस कैदखाने में पड़ जाने के कारण हम अपने को भूले हुए हैं; स्वयं अपने को नहीं जानते। जबतक हम अपने निज स्वरूप को नहीं पहचानेंगे, तबतक हम दुःख की हालत में ही रहेंगे।

संत लोग कहते हैं कि लोगो! चेतो, अपने स्वरूप को याद करो तथा शरीर और संसार-रूपी कैदखाने से निकलकर अपने धाम में चलो। यह अपना घर नहीं है, अपना देश नहीं है। हमारे गुरु महाराज (सन्त सद्‌गुरु महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज) ने कहा है–

जनि लिपटो रे प्यारे जग परदेशवा,
सुख कछु इहवाँ नाहिं।
यह परदेशवा काल को भेसवा,
जो रे आवयँ दुख पाहिं॥

हम परदेश में आ गये हैं। यह संसार अपना घर नहीं है; परमात्मा का धाम अपना घर है। शरीर और संसार के बंधन में पड़कर अपने देश को, अपने धाम को भूल गये हैं; अपने आपको भूल गये हैं। हम जबतक भूले रहेंगे, तबतक दुःख की हालत में रहेंगे। जो इस संसार में आते हैं, वे भूल-भुलैया में पड़ जाते हैं। भूल-भुलैया में पड़कर सबको दुःख उठाना पड़ता है। भगवान श्रीराम भक्तों के दुःख को दूर करने के लिए इस संसार में आये; परन्तु उनको भी दुःख हुआ; क्योंकि उन्होंने भी भक्तों के प्रेमपाश में बँधकर शरीर धारण किया, फलस्वरूप उन्हें भी दुःख का भोग भोगना पड़ा। संत कबीर साहब ने कहा है–

तनधर सुखिया कोइ न देखा,
जो देखा सो दुखिया हो।

जो शरीर धारण करता है, उसको दुःख होता ही है। असल में शरीर ही दुःख का कारण है। शरीर के बंधन में बँध जाने के कारण ही लोगों को दुःखी होना पड़ता है। संतगण कहते हैं कि इस दुःख से छूटना चाहते हो, तो अपने धाम में चलो। गुरु महाराज की वाणी में है–

सुधि करो प्यारे हो आपन देश के,
जहवाँ क्लेश कछु नाहिं।

अपने धाम की सुधि करो, जहाँ किसी प्रकार का दुःख-क्लेश नहीं है, वह सुख का धाम है। कैसे उस धाम में जायेंगे? गुरु की सहायता के बिना कोई उस धाम में नहीं जा सकता। क्यों? संत राधास्वामी के वचन में है–

भव सागर धारा अगम, खेवटिया गुरु पूर।
नाव बनाई शब्द की, चढ़ बैठे कोइ सूर॥

यह संसार कैसा है? इस संसार को कह दिया कि यह भवसागर है। भव कहते हैं संसार को, सागर कहते हैं समुद्र को। हमलोग संसार-सागर में पड़े हुए हैं। हम अपने बल पर इस संसार-सागर के पार नहीं जा सकते। सिर्फ हमलोगों के लिए ही यह बात नहीं है, गो० तुलसीदासजी ने तो यहाँ तक लिख दिया है कि–

गुरु बिनु भवनिधि तरै न कोई।
जौं बिरंचि संकर सम होई॥

ब्रह्मा, विष्णु, महेश ही क्यों न हों, गुरु के बिना कोई संसार-सागर के पार नहीं जा सकता। गुरु ही इस संसार से पार उतार सकते हैं; जैसे नाविक लोगों को नाव पर चढ़ाकर उन्हें पार उतार देता है। गुरु भी जीव को आन्तरिक शब्द-रूपी जहाज पर चढ़ाकर संसार-सागर के पार उतार देते हैं।

हमलोग जो बोलते हैं, वह भी शब्द है; लेकिन वह वर्णात्मक शब्द है, बाहर का शब्द है। अपने अन्दर में जो शब्द हो रहा है, उसे अभी हमलोग सुन नहीं पाते हैं; क्योंकि हमारी चेतनधारा का फैलाव है। बाहरी संसार में हो

गया है। शरीर में हमलोग हैं; लेकिन इन्द्रियों के संग होकर हैं, बहिर्मुख हैं, इसलिए उस शब्द को नहीं सुन पाते हैं। वह शब्द कहाँ से आ रहा है? 'है आ रही धुर से सदा, तेरे बुलाने के लिए।' हमलोगों को बुलाने के लिए ईश्वर-परमात्मा की ओर से शब्द आ रहा है, उनकी पुकार हो रही है। वे क्यों पुकार रहे हैं? हमलोग उस परम प्रभु परमात्मा की संतान हैं। उन्हीं के अंश हैं। कोई भी पिता अपनी संतान को दुःख में देखना नहीं चाहता। इसी तरह परमात्मा भी हमलोगों को दुःख में देखना नहीं चाहते।

हमलोग दुःख की नगरी में चले आये हैं। वे अपनी गोद में बुलाना चाहते हैं। वे पुकार रहे हैं; लेकिन हम उनकी आवाज सुन नहीं पाते। जैसे माँ पुत्र को पुकारती है; लेकिन बच्चा जबतक खेलने में मस्त रहता है, माता की पुकार सुन नहीं पाता। जब वह माँ की आवाज सुन लेता है, तब खेलना छोड़ देता है और दौड़कर माँ की गोद में चला जाता है।

ठीक उसी तरह हमलोग भी परमात्मा की पुकार को, उनकी आवाज को सुन नहीं पाते। वह पुकार कहाँ हो रही है? जहाँ हम हैं, वहीं हो रही है; लेकिन हम उसे सुन नहीं पाते। सुन नहीं पाने का कारण यह है कि शरीर में रहकर भी हमारा फैलाव इन्द्रियों के घाटों में हो गया है।

हम बहिर्मुख बन गये हैं। हम आँख के घाट में रहकर बाहर के दृश्य देख रहे हैं। कान के घाट में आकर हम बाहर के शब्द सुन रहे हैं। नाक के घाट में आकर बाहरी गंध ग्रहण करते हैं, जीभ के घाट में आकर बाहर का रस ग्रहण करते हैं तथा त्वचा के घाट में आकर बाहर का स्पर्श प्राप्त करते हैं।

इस तरह पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के घाटों में हमारा फैलाव हो गया है। शरीरस्थ चेतन आत्मा की धारें इन्द्रियों के घाटों में रहने के कारण यह बहिर्मुख बनी हुई हैं। इसको अपने आपका भी ज्ञान नहीं है; क्योंकि इसके ऊपर आवरण है—इन्द्रियों और जड़ का आवरण। इसे न तो अपना ज्ञान है और न यह परम प्रभु परमात्मा की आवाज सुन पा रही है।

संत-महात्मा कहते हैं कि जबतक शरीर-इन्द्रियों के संग रहोगे, बहिर्मुख होकर रहोगे, दुःख में ही पड़े रहोगे, दुःख से छूट नहीं पाओगे। बाहर में कभी सुख होगा, कभी दुःख होगा, कभी हर्ष होगा, कभी शोक होगा, कभी हँसोगे, तो कभी रोओगे, ऐसा ही होता रहेगा। एक तरह की स्थिति में नहीं रह पाओगे। कोई भी नहीं रह पाता। और, ऐसा हमेशा से होता आया है। सूरदासजी महाराज ने लिखा है—

सब दिन होत न एक समान ॥
एक दिन राजा हरिश्चन्द्र गृह,
सम्पत्ति मेरु समान।
एक दिन जाय श्वपच गृह सेवक,
अम्बर हरत मसान ॥

राजा हरिश्चन्द्र सत्ययुग में हुए थे। लोग उनकी कथा पढ़ते हैं, नाटक देखते हैं, उन्हें जानकारी है कि वे चक्रवर्ती राजा थे। मेरु जैसे विशाल पर्वत के समान उनके पास सम्पत्ति का ढेर था; लेकिन एक दिन उन्हें भी डोम के यहाँ बिकना पड़ा, उसकी चाकरी करनी पड़ी। उन्हें भी दारुण दुःख झेलना पड़ा।

हम पाण्डवों की कथा पढ़ते हैं। वे भी राजा थे, जुए में सर्वस्व हार जाने के कारण उन्हें बारह वर्षों तक जंगल में रहना पड़ा। एक वर्ष का अज्ञातवास करना पड़ा। उन्होंने भी बहुत-बहुत कष्ट झेला। महाभारत पढ़कर देखिये। अन्य राजा-महाराजाओं के इतिहास को पढ़कर देखिये—कोई भी ऐसे नहीं हुए, जिनके जीवन

'असंभव' शब्द मेरे कोष में नहीं है।—नेपोलियन

में विपत्ति नहीं आई हो। कोई भी हमेशा सुख की हालत में नहीं रह सके।

हमारे गुरु महाराज एक कथा सुनाते थे–मुगलों के अन्तिम बादशाह युद्ध में हार गये। युद्ध में पराजय के बाद वे खाली देह भागे। कोई सहायक नहीं। नहीं भागते तो पकड़े जाते, और मार दिये जाते। उन्होंने राजसी वस्त्राभूषण उतारकर फेंक दिया, इसलिए कि लोग पहचान लेंगे। लोग पहचान लेंगे तो पकड़े जायेंगे। उनकी उँगली में एक बहुत कीमती अँगूठी थी, उसे जौहरी के हाथों बेचकर जो कुछ प्राप्त हुआ, उससे फटे-पुराने वस्त्र खरीदकर पहन लिये और बैलों की एक जोड़ी के साथ बैलगाड़ी खरीद ली। गाड़ीवान के वेश में लोगों का समान ढोने लगे। जो आमदनी होती, उससे अपने लिए भोजन और बैलों के लिए चारे का प्रबंध करते। रहने के लिए घर तो था नहीं, फुटपाथ पर ही सो जाते। उनके नाम से सभी परिचित थे; लेकिन कोई पहचानता नहीं था।

संयोगवश एक दिन ऐसा हुआ कि बादशाह के पुराने मुलाकाती सेठजी उनकी ही बैलगाड़ी के समीप आ खड़े हुए। बादशाह को देखकर वे अचम्भे में पड़ गये–बादशाही पोशाक की जगह गाड़ीवान की वेशभूषा–यह क्या? सेठजी की आँखों में आँसू आ गये। वे बादशाह के पास गये, हाथ जोड़कर बोले–'सरकार! आपकी ऐसी हालत! आप हमारे यहाँ क्यों नहीं आ गये। मेरे यहाँ आ जाते, तो आराम से रहते।'

बादशाह ने सेठ की बातें गौर से सुनी, लेकिन वे थे बड़े स्वाभिमानी। बोले–'क्या कहते हो जी! सारे देश पर मेरी हुकूमत थी। अब देश पर हुकूमत नहीं रही तो क्या हुआ? इन दो बैलों पर अब मेरा शासन है। मैं अपना पेट पालने के लिए तुम्हारे पास जाता!'

गुरु महाराज कहते थे कि सब दिन एक तरह की स्थिति नहीं रहती, एक दशा में लोग नहीं रह पाते। 'सम्पत्ति विपत्ति सों सम्पत्ति, देह धरे को यहै सुभाई।' यह देह धारण करने का स्वभाव अर्थात् फल है। संसार ऐसा ही है। संत लोग कहते हैं कि इस दुःख की नगरी से निकलो। दुःख की नगरी से कैसे निकलेंगे? रास्ता कौन बतावेंगे? गुरु महाराज की वाणी में है–

बिन दया संतन की 'मेंहीं', जानना इस राह को।
हुआ नहीं होता नहीं, वो होनहारा है नहीं॥

संत सद्गुरु की कृपा के बिना इस संसाररूपी कैदखाने से, शरीररूपी कैदखाने से नहीं निकल सकते। और जबतक इसमें रहेंगे, यह शोक-हर्ष का खेल चलता रहेगा। सहजोबाई कहती हैं–

जैसे सड़सी लोह की, छिन पानी छिन आग।
ऐसे सुख दुख जगत के, सहजो तू तज भाग॥

अर्थात् संसार के इस सुख-दुःख को त्यागकर भागो। लेकिन संसार से कैसे भाग सकेंगे? आप जंगल-पहाड़, तीर्थ-धाम, देश-विदेश कहीं भी चले जायेंगे, रहेंगे तो संसार में ही। इस संसार से निकलने का रास्ता कहीं बाहर में नहीं है। यह रास्ता अपने अन्दर में है।

अपने अन्दर यह रास्ता कहाँ है? कहते हैं, जहाँ तुम हो, रास्ता भी वहीं है। तुम शरीर में हो, शरीर में ही रास्ता है; लेकिन उस रास्ते की जानकारी गुरु की कृपा के बिना नहीं हो सकती। सहजोबाई की वाणी में है –

सहजो कारज जगत के, गुरु बिन पूरे नाहिं।
हरि तो गुरु बिन क्यों मिलैं, समझ देख मन माहिं॥

संसार का काम भी गुरु के मार्गदर्शन के बिना लोग ठीक-ठीक नहीं कर पाते, फिर ईश्वर तक जाने का मार्ग बिना गुरु के बताये कैसे प्राप्त कर सकेंगे। संत सद्गुरु की शरण में गये बिना यह कदापि संभव नहीं।□

तुम्हारा शरीर पवित्रता का मंदिर है। –बाइबिल

संत वचन शीतल सुधा करत तापत्रय नाश

मोह नरक में गिराता है

यदि ब्राह्मण के पास धन का महान् संग्रह हो जाय, तो वह उसके लिए अनर्थ का ही हेतु है; धन-ऐश्वर्य से मोहित ब्राह्मण कल्याण से भ्रष्ट हो जाता है। धन-सम्पत्ति मोह में डालनेवाली होती है। मोह नरक में गिराता है, इसलिए कल्याण चाहनेवाले पुरुष को अनर्थ के साधनभूत अर्थ का दूर से ही परित्याग कर देना चाहिए। जिसको धर्म के लिए धन-संग्रह की इच्छा होती है, उसके लिए उस इच्छा का त्याग ही श्रेष्ठ है; क्योंकि कीचड़ को लगाकर धोने की अपेक्षा उसका दूर से स्पर्श न करना ही उत्तम है। धन के द्वारा जिस धर्म का साधन किया जाता है, वह क्षयशील माना गया है। दूसरे के लिए जो धन का परित्याग है, वही अक्षय धर्म है, वही मोक्ष की प्राप्ति करानेवाला है।

—महर्षि कश्यप

मोक्ष के द्वार पर चार द्वारपाल

मोक्ष के द्वार पर चार द्वारपाल कहे गये हैं—शम, विचार, संतोष और चौथा सत्संग। पहले तो इन चारों का ही प्रयत्नपूर्वक सेवन करना चाहिए। यदि चारों के सेवन की शक्ति न हो, तो तीन का सेवन करना चाहिए।; तीन का सेवन न हो सकने पर दो का सेवन करना चाहिए। इनका भली भाँति सेवन होने पर ये मोक्षरूपी राजगृह में मुमुक्षु का प्रवेश होने के लिए द्वारा खोलते हैं। यदि दो के सेवन की भी शक्ति न हो तो सम्पूर्ण प्रयत्न से प्राणों की बाजी लगाकर भी इनमें से एक का अवश्य आश्रयण करना चाहिए। यदि एक वश में हो जाता है, तो शेष तीन भी वश में हो जाते हैं।

—योगवासिष्ठ

सत्य को अमृत के समान ग्रहण कर

यदि तुझे मुक्ति की इच्छा है, तो विषयों को विष के समान त्याग दे तथा क्षमा, सरलता, दया, पवित्रता और सत्य को अमृत के समान ग्रहण कर। शरीर बढ़ जाने से ही किसी का बड़ा होना नहीं जाना जाता, जैसे सेमल के फल की गाँठ बड़ी होती है; किन्तु इससे उसमें कोई विशेषता नहीं आ जाती। छोटे-से शरीरवाला छोटा ही वृक्ष क्यों न हो, यदि उसमें फल लगा हो, तो वह बड़ा है। और ऊँचे-से-ऊँचा वृक्ष क्यों न हो, यदि वह फल से शून्य है, तो बड़ा नहीं माना जाता। अधिक वर्षों की आयु होने से, बाल पक जाने से, धन से अथवा बंधुओं के होने से भी कोई बड़ा नहीं माना जाता। हममें से जो वेद-शास्त्रों को जानता और उनकी व्याख्या करता है, वही बड़ा है—यह ऋषियों ने ही धर्म-मर्यादा स्थापित की है।

—महर्षि अष्टावक्र

महापुरुष महिमा

महापुरुषों के चरणों की धूलि से अपने को नहलाये बिना केवल तप-यज्ञादि वैदिक कर्म, अन्नादि के दान, अतिथि सेवा, दीन सेवा आदि गृहस्थोचित धर्मानुष्ठान, वेदाध्ययन अथवा जल,

श्रम पर सभी विजयी होता है। —होमर

अग्नि या सूर्य की उपासना आदि किसी भी साधन से यह परमात्म-ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। इसका कारण यह है कि महापुरुषों के समाज में सदा पवित्र कीर्ति श्रीहरि के गुणों की चर्चा होती रहती है, जिससे विषयवार्ता तो पास ही नहीं फटकने पाती। और जब भगवत्कथा का नित्यप्रति सेवन किया जाता है, तब वह मोक्षाकांक्षी पुरुष की शुद्ध बुद्धि को भगवान वासुदेव में लगा देती है।

—महात्मा जड़भरत

मनुष्य-शरीर विषय-भोग के लिए नहीं

इस मर्त्यलोक में यह मनुष्य-शरीर दुःखमय विषयभोग प्राप्त करने के लिए नहीं है। ये भोग तो विष्ठाभोजी सूकर-कूकरादि को भी मिलते हैं। इस शरीर से दिव्य तप ही करना चाहिए, जिससे अंतःकरण शुद्ध हो; क्योंकि इसी से अनन्त ब्रह्मानंद की प्राप्ति होती है। शास्त्रों ने महापुरुषों की सेवा को मुक्ति का और स्त्री-संगी कामियों के संग को नरक का द्वारा बताया है। महापुरुष वे ही हैं, जो समानचित्त, परम शान्त, क्रोधहीन, सबके हितचिन्तक और सदाचार सम्पन्न हों।

—भगवान ऋषभदेव

तृष्णा को त्यागनेवाला सुखी

तृष्णा सबसे बड़ी पापिष्ठा है, वह सदा उद्वेग में डालनेवाली मानी गयी है। उसके द्वारा अधिकतर अधर्म में ही प्रवृत्ति होती है, वह अत्यन्त भयंकर और पापकर्मों में ही बाँध रखनेवाली है। खोटी बुद्धिवाले मनुष्यों के लिए जिसका परित्याग अत्यन्त कठिन है, जो मनुष्य-शरीर के बूढ़े होने पर भी स्वयं बूढ़ी नहीं होती—अपितु नित्य तरुणी ही बनी रहती है, जो मानव के लिए एक प्राणान्तकारी रोग के सदृश है, ऐसी तृष्णा को त्याग देता है, उसी को सुख मिलता है।

—महर्षि वैशम्पायन

सत्य ही सर्वश्रेष्ठ यज्ञ

सत्य ही धर्म, तपस्या और योग है, सत्य ही सनातन ब्रह्म है और सत्य ही सबसे श्रेष्ठ यज्ञ है; सत्य में ही सब कुछ प्रतिष्ठित है। सत्य से बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है, झूठ से बढ़कर और कोई पातक नहीं है। सत्य ही धर्म का आधार है, अतः सत्य का कभी लोप नहीं करें।

—भीष्म पितामह

प्रज्ञावान मनुष्य सरोवर की भाँति सदा शान्त रहते हैं

जो छिछला या छिछोरा होता है, वही ज्यादा आवाज करता है। जो गंभीर होता है, वह शांत होता है। अधभरे घड़े की तरह मूर्ख शोर मचाते हैं, पर प्रज्ञावान गंभीर मनुष्य सरोवर की भाँति सदा शान्त रहते हैं। जिस प्रकार कलछुल दाल-तरकारी का स्वाद नहीं जान सकता, उसी प्रकार मूर्ख मनुष्य सारी जिंदगी साधु-संतों की सेवा में रहकर भी धर्म और ज्ञान का रस प्राप्त नहीं कर सकता। धर्म को जानकर जो मनुष्य वृद्धजनों का आदर-सत्कार करते हैं, उनके लिए इस लोक में प्रशंसा है और परलोक में सुगति।

—भगवान बुद्ध

ब्रह्म का निरूपण

—समर्थ गुरु रामदासजी महाराज

श्रोता कहता है कि निराकार, निराधार और निर्विकल्प का अर्थ क्या है? वक्ता उत्तर देता है, जिसका कोई आकार न हो; निराधार वह है, जिसका कोई आधार न हो और निर्विकल्प वह है, जिसकी कोई कल्पना न हो सके। और ये तीनों बातें उस परब्रह्म के संबंध में ठीक घटती हैं।

अब निरामय, निराभास और निरवयव का अर्थ बतलाइए। निरामय का मतलब यह है कि वह परब्रह्म विकार-रहित है; निराभास का मतलब यह है कि उसका भास नहीं हो सकता और निरवयव का मतलब है कि उसका कोई अवयव नहीं है। निष्प्रपंच, निष्कलंक और निरुपाधि का मतलब बतलाइए। मतलब यह है कि परब्रह्म में कोई प्रपंच, कलंक या उपाधि नहीं है। निरुपम, निरवलम्ब और निरपेक्ष का मतलब बतलाइए। मतलब यह कि उस परब्रह्म की कोई उपमा नहीं है, कोई अवलंब नहीं है और उसमें अपेक्ष नहीं है।

निरंजन, निरंतर और निर्गुण का मतलब बतलाइए। मतलब यह कि उस परब्रह्म में कोई कल्मष नहीं है, उसके बीच में कोई अंतर नहीं पड़ता है और उसमें कोई गुण नहीं है। निःसंग, निर्मल और निश्चल का मतलब बतलाइए। मतलब यह कि उस परमात्मा में कोई संग, मल या चलन अथवा चंचलता नहीं है।

निःशब्द, निर्दोष और निवृत्ति का मतलब बतलाइए। मतलब यह कि उस परब्रह्म में कोई शब्द, दोष या वृत्ति नहीं है। निष्काम, निर्लेप और निष्कर्म का मतलब बतलाइए। मतलब यह कि उसमें कोई काम, लेप या कर्म नहीं है। अनाम, अजन्मा और अप्रत्यक्ष का मतलब बतलाइए। मतलब यह कि उसका कोई नाम नहीं है, उसका जन्म नहीं होता और वह प्रत्यक्ष नहीं हो सकता।

अगणित, अकर्तव्य और अक्षय का मतलब बतलाइए। मतलब यह कि वह गिना नहीं जा सकता, उसमें कोई कर्तव्य नहीं है और उसका कभी क्षय नहीं होता। अरूप, अलक्ष और अनन्त का मतलब बतलाइए। मतलब यह कि उसका कोई रूप नहीं है, उसको कोई लख या देख नहीं सकता और उसका अंत नहीं है। अपार, अटल और अतर्क्य का मतलब बतलाइए। मतलब यह कि उसका कोई पार नहीं है, वह टल नहीं सकता और उसके संबंध में कोई तर्क नहीं हो सकता।

अद्वैत, अदृश्य और अच्युत का मतलब बतलाइए। मतलब यह कि उसमें द्वैत नहीं है, वह दृश्य नहीं है और वह कभी अपने स्थान से च्युत नहीं हो सकता। अछेद्य, अदाह्य और अक्लेद्य का मतलब बतलाइए। मतलब यह कि वह छेदा नहीं जा सकता, जलाया नहीं जा सकता और घुलाया नहीं जा सकता। परब्रह्म वही है, जो सबसे परे है। स्वयं अनुभव करने पर और सद्‌गुरु के द्वारा पता चलता है कि हम स्वयं भी वही परब्रह्म हैं।

जितनी साकार वस्तुएँ दिखलाई पड़ती हैं, वे सब कल्पान्त में नष्ट हो जाती हैं, पर वह परब्रह्म-स्वरूप ज्यों का त्यों बना रहता है। जो सबमें सार पदार्थ है, जो कभी मिथ्या नहीं होता और सदा सत्य रहता है, जो नित्य और निरंतर है, वह भगवान का निजस्वरूप है। □

आचरण से संत-असंत का पता चलता है, वेश से नहीं।—नारद

भक्ति

—श्रीरामकृष्ण परमहंसजी महाराज

प्रेम का अर्थ है भगवान के प्रति ऐसा प्यार कि जिसमें मनुष्य सारे जगत को भूल जाता है और साथ ही अपना शरीर, जो इतना प्रिय है, उसे भी भूल जाता है।

जानते हो, भगवान को अपने भक्तों का प्रेम कितना प्रिय है? जैसे खली मिला हुआ भूसा गाय को प्रिय होता है। इतना प्रिय कि गाय उसे लालच के साथ निगलती चली जाती है।

याद रखो, भक्त का हृदय भगवान का निवास-स्थान होता है। यह ठीक है कि वे सभी प्राणियों में वास करते हैं; किन्तु भक्त के हृदय में वे स्वयं को विशेष रूप से प्रकट करते हैं। भक्त का हृदय भगवान का बैठकखाना है। विषय-सुख के प्रति आसक्ति जितनी कम होती जाती है, भगवान के प्रति भक्ति उतनी ही बढ़ती जाती है।

प्रेम-प्रीति तीन प्रकार की होती है—समर्था (स्वार्थहीन), समंजसा (पारस्परिक) और साधारणी (स्वार्थयुक्त)। समर्था प्रीति ही सबसे उच्चकोटि की है। इसमें प्रेमी केवल प्रेमास्पद का ही सुख चाहता है, इसके लिए चाहे उसे स्वयं को कष्ट ही क्यों न सहन करना पड़े। समंजसा प्रीति मध्यम कोटि की है। इसमें प्रेमी प्रेमास्पद के सुख के साथ स्वयं के सुख का भी ध्यान रखता है। साधारणी प्रीति सबसे निम्नकोटि की है। इसमें प्रेमी केवल अपना ही सुख चाहता है, प्रेमास्पद के सुख-दुःख की कोई परवाह नहीं करता।

तनिक भी संसारासक्ति के रहते भगवान के दर्शन नहीं हो सकते। दियासलाई की सींक अगर गीली हो, तो हजार बार घिसने पर भी आग नहीं जलेगी। केवल ढेर भर सींकें ही नष्ट होंगी। संसाराक्ति में डूबा मन भींगी सींक के समान है।

भगवान का सर्वश्रेष्ठ भक्त कौन है? श्रेष्ठ भक्त वह है, जो ब्रह्म का साक्षात्कार कर देखता है कि भगवान ही समस्त जीव, जगत एवं चौबीस तत्त्व बने हुए हैं। पहले 'नेति-नेति' विचार करते हुए छत पर चढ़ना पड़ता है। तब यह दिखाई देता है कि जिन ईंट, चूना, सुरखी आदि वस्तुओं से छत बनी है, उन्हीं से सीढ़ियाँ भी बनी हैं। उस समय भक्त स्पष्ट अनुभव करता है कि ब्रह्म से ही यह जीव-जगत आदि बने हैं।

(शेषांश पृष्ठ २१ का)

जिस प्रकार सब देशों में अपने-अपने सिक्के चलते हैं और उन देशों के सिक्के लेकर ही हम वहाँ जा सकते हैं और यदि किसी के पास किसी देश के सिक्के न हों, तो वह वहाँ नहीं जा सकते। किन्तु यदि सोना पास में हो तो किसी भी देश में हम जा सकते हैं, चाहे वहाँ के सिक्के हमारे पास हों या न हों। ठीक इसी प्रकार श्रेष्ठ कर्मोवाला व्यक्ति जिनके पास सत्संगरूपी सोना है, वह जिस लोक में जाना चाहे, वहाँ जा सकता है। सालोक्य, सामीप्य, सायुज्य और सान्निध्य—चारों मुक्तियाँ सत्संग से ही सुलभ हैं। सत्संग की जितनी भी महिमा गायी जाय, थोड़ी है। सत्संग ही परमार्थ का द्वार है। सत्संग से ही निम्न वृत्तियाँ समाप्त होती हैं और अंतःकरण पवित्र होता है। सत्संग ही भगवत्प्राप्ति के लिए सर्वसुलभ और सबसे सरल साधन है। जो स्थिति अत्यन्त दुर्लभ साधनों से भी अप्राप्य है, वही सत्संग द्वारा सहज ही प्राप्त हो जाती है।

इस तरह सारी साधना का मूल सत्संग है, जो सब प्रकार की सिद्धियों और फलों को देनेवाला है। सत्संगति मुद मंगल मूला।
सोइ फल सिधि सब साधन फूला ॥□

सत्संगति मुद मंगल मूला

–महामंडलेश्वर गोविन्दप्रकाशजी महाराज

'बड़े भाग्य मानुष तनु पावा' मगर किसलिए? यह एक विचारणीय प्रश्न है। इस प्रश्न के हल में ही जीवन का विकास निहित है। जीवन खोने के लिए है या पाने के लिए? जो इस प्रश्न का उत्तर पा लेते हैं, निश्चय ही उनका मानुष तन पाना सार्थक हो जाता है।

सभी योनियों में मनुष्य योनि सर्वश्रेष्ठ कही गयी है। मनुष्य योनि के श्रेष्ठ होने का कारण यह है कि परमात्मा ने उसे विवेक नाम की एक ऐसी शक्ति दे रखी है, जो सत्-असत् का भेद बता सकने में समर्थ है। यह विवेकरूपी शक्ति समस्त प्राणियों में केवल मनुष्यों के पास ही है। यही शक्ति जाग्रत होकर जीवन का सर्वश्रेष्ठ फल प्राप्त करा सकती है और यदि सोयी हो, तो जीवन को नरक बना डालती है। अब प्रश्न यह है कि जिस मनुष्य योनि को प्राप्त करने के लिए देवता तक लालायित रहते हैं, उसे पाकर क्या केवल भोगों में ही खो देना है? याद रखो, मनुष्य योनि मिली है शुभ कर्मों द्वारा जीवन का उच्चतम विकास करने के लिए। जीवन का उच्चतम विकास परमात्मा की प्राप्ति में ही निहित है।

किन्तु प्रश्न यह है कि प्राणी इस विकास की ओर उन्मुख कैसे हो? आज चारो ओर जो जीवन दिखाई पड़ रहा है, उसकी दिशा विकास की ओर नहीं, विनाश की ओर है। आज जीवन में घोर अशान्ति, दुःख, अभाव और संघर्ष है। आज प्राणी इन्हीं को जीवन माने जिंदगी की गाड़ी को घसीट रहा है। सफल जीवन का अर्थ है कि वह अभाव, अशान्ति और संघर्ष से मुक्त हो। इसलिए ईश्वर ने मनुष्य को विवेक शक्ति दी है कि वह सत्-असत् का निर्णय कर सत् को ग्रहण कर और असत् का त्याग कर सके। किन्तु विवेक के अभाव में सत् के त्याग और असत् के ग्रहण की बात ही देखने में आती है। विवेक का अभाव नहीं हो सकता। वह रहता तो हर व्यक्ति में है, किन्तु व्यक्ति उसकी अवहेलना करके उसे दबा देता है। फल यह होता है कि असत् या दोष उनके जीवन से छूट नहीं पाते और असत् से संबंध के कारण ही अशान्ति, अभाव और दुःख उसे भोगने पड़ते हैं।

इसलिए प्राप्त विवेक का समुचित आदर करना ही भगवत्प्राप्ति के लिए सबसे बड़ी साधना है। विवेकपूर्ण जीवन ही भगवत्प्राप्ति कर सकता है और विवेक को जाग्रत करने का काम सत्संग का है।

'बिनु सत्संग विवेक न होई।'

समस्त शास्त्रों, पुराणों और संत-महापुरुषों ने एक स्वर से सत्संग की महिमा गायी है। सत्संग ही वह परम शक्ति है, जो मनुष्य के विवेक को जाग्रत कर सत् परमात्मा से उसका संबंध बनाती है। सत्संग का अर्थ संतों का संग, सत् का चिंतन और सत्य का अनुसंधान है। सत्संग एक सागर के समान है, जिसमें पड़ी हुई जीवन-नैया यदि सद्गुरु मल्लाह द्वारा विवेक और धैर्य के पतवारों से चलायी जाती है, तो आनेवाले कठिनाइयों के तूफान उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। जीवन में सुख-दुःख के भयंकर तूफान आते रहते हैं, जिसमें फँसकर साधारण प्राणी अपना विनाश कर डालता है, किन्तु जिसने सत्संग का आश्रय लिया है, वह विवेक और धैर्य से अपने को विनाश से बचाने में सफल हो जाता है।

भाग्योदयेन बहुजन्मसमर्जितेन,
सत्संगमेव लभते पुरुषो यदा वैः।

कुछ ऐसे भी होते हैं, जो केवल बगुले की तरह मछली खाते हैं अर्थात् वे सत्संग से कुछ प्राप्त करते नहीं, उलटे बहस में अपना समय नष्ट करके अपनी बुद्धि कुण्ठित कर लेते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी लोग हैं, जो बतखों की तरह आते हैं अर्थात् जैसे बतखें मानसरोवर में केवल पानी पीने आती हैं, वैसे ही वे भी सत्संग में केवल हाजिरी देने ही आते हैं। (शेषांश पृष्ठ २० पर)

सुख और अक्षय आनंद का स्त्रोत सत्संग

—पद्माबाई

मानव-जीवन में शाश्वत सुख एवं अक्षय आनंद का स्त्रोत सत्संग है। सत्संग अध्यात्म-जीवन की पूँजी है। सत्संग समस्त दुर्गुणों को दूर कर मन को सद्गुणों से भरपूर कर देता है। सत्संग से वैराग्य की प्राप्ति होती है। मात्र सत्संग ही एक ऐसा आधार है, जिसके द्वारा मनुष्य अपने भ्रम का निवारण कर अपना सुधार एवं उद्धार कर सकता है। सत्संग के द्वारा ही सांसारिक मन को परमात्मा की ओर किया जाता है। गो० तुलसीदासजी ने लिखा है—

सठ सुधरहिं सत्संगति पाई ।
पारस परसि कुधातु सुहाई ॥

सत्संग का अर्थ है—सत् का संग। सत् अर्थात् जिसमें परिवर्तन न हो। सत्य वही है, जिसपर सारा चराचर आधारित है। वही सर्वाधार ईश्वर सत् है। गो० तुलसीदासजी ने लिखा है—'जानत तुम्हहिं तुम्हइ होइ जाई।' ऐसे महापुरुष को संत सद्गुरु कहते हैं और उनका संग ही सत्संग है। जीवात्मा का परमात्मा से संग ही उच्च कोटि का सत्संग है। इस उच्चकोटि के सत्संग के लिए संतों का संग अनिवार्य है। उनका अवलंब पाकर ही हम इस उच्चकोटि का सत्संग प्राप्त कर सकते हैं। भगवान श्रीराम ने शबरी से कहा—'प्रथम भगति सन्तन्ह कर संगा।' पुनः वे कहते हैं—'मोतें संत अधिक करि लेखा।' संत को पाकर ही साधक पुरुष संत कहलाये। उन्होंने साधना द्वारा ही सत् का साक्षात्कार किया। इसलिए संतों से ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें उनका संग करना चाहिए तथा परम प्रभु परमात्मा को पाने के लिए उनकी भक्ति करनी चाहिए। परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान हमें संत ही बतलाते हैं। संतों ने अपनी वाणी में परमात्मा के जिस स्वरूप का वर्णन किया, वह इन्द्रियों से ग्रहण नहीं हो सकता। वह अव्यक्त, अगोचर है। गो० तुलसीदासजी ने लिखा है—

गो गोचर जहँ लग मन जाई।
सो सब माया जानहु भाई॥

परमात्मस्वरूप का ज्ञान बहुत ऊँचा है। परमात्मा से विशेष व्यापक कुछ नहीं है। आत्मा से ही ईश्वर का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। जबतक जीव शरीर और इन्द्रियों के संग रहेगा, तबतक वह माया के बंधन में ही बँधा रहेगा। आत्मस्वरूप का ज्ञान प्राप्त करने के लिए शरीर और इन्द्रियों के संग से आत्मा को छुड़ाना होगा। जब आत्म-स्वरूप का ज्ञान हो जाएगा, तब परमात्मस्वरूप का भी ज्ञान स्वतः हो जाएगा। संतों ने बतलाया है—संसार अनित्य है और परमात्मा नित्य है। अनित्य संसार का सुख भी अनित्य है और नित्य परमात्मा का सुख भी नित्य है। संतों की वाणियों के द्वारा ही ईश्वर के अस्तित्व एवं स्वरूपादि की जानकारी प्राप्त होती है, उनके प्रति श्रद्धा एवं विश्वास का भाव उदय होता है। श्रद्धा से ही भक्ति की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा मिलती है। ईश्वर-भक्ति की भावना से प्रेरित मन ही भक्ति कर सकता है। भक्ति स्वतंत्र और सब सुखों की खान है। ईश्वर-भक्ति का प्रेरण-स्त्रोत सत्संग ही है। ईश्वर की भक्ति में स्तुति-प्रार्थना और उपासना—तीन बातें आती हैं। स्तुति कहते हैं—गुणगान करने को, प्रार्थना कहते हैं—नम्रतापूर्वक कुछ माँगने को और उपासना उस साधना के करने को कहते हैं, जिससे ईश्वर तक पहुँचा जा सकता है। वे साधन हैं—सत्संग और ध्यान। जिस प्रकार शरीर के लिए अन्न और जल दोनों की आवश्यकता होती है, उसी तरह परमार्थ के लिए सत्संग और ध्यान—दोनों ही अनिवार्य हैं। जिस तरह अग्नि को हवा तेज करती है, उसी तरह ध्यानरूपी अग्नि को तेज करने के लिए सत्संग हवा का काम करता है। गुरु महाराज का उपदेश है—

सत्संग नित अरु ध्यान नित रहिये करत संलग्न हो।
व्यभिचार चोरी नशा हिंसा, झूठ तजना चाहिए॥

अगर पंच पापों से नहीं बचेंगे, तो सत्संग

में मन कदापि नहीं लगेगा। इसके लिए पुनः वे कहते हैं–

खान पान को प्रथम सम्हारो।
तब रस-रस सब अवगुण मारो॥

जिसका खान-पान नहीं सँभला हुआ है, उसके मन में सत् विचार आ ही नहीं सकते और अगर सत् विचार नहीं आएँगे, तो सत्कर्म में भी मन नहीं लगेगा। हमारे गुरु महाराज ने सत्संग को संतमत का प्रधान अंग माना है। जब ईश्वर की अहैतुकी कृपा होती है, तभी सत्संग का सुअवसर सुलभ होता है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने 'विनय-पत्रिका' में कितना सुन्दर लिखा है–

जब द्रवहिं दीनदयाल राघव, साधु संगति पाइये।
जेहि दरस परस समागमादिक, पाप रासि नसाइये॥

सत्संग की महिमा का वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता।

सुनि आचरज करइ जनि कोई।
सतसंगति महिमा नहिं गोई॥ (मानस)

सत्संग में ज्ञान, भक्ति और वैराग्य की त्रिवेणी प्रवाहित होती है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने सत्संग का प्रत्यक्ष प्रभाव अपनी इन चौपाइयों में दरसाया है–

मज्जन फल देखिय तत्काला।
काक होहिं पिक बकउ मराला॥

श्रीमदाद्य शंकराचार्यजी ने क्षणभर के सत्संग की महत्ता का वर्णन अपनी वाणी में कितना सुन्दर किया है–

पद्म पत्र पर पड़े हुए अति चंचल नीर समान।
अतिशय चपल और क्षणभंगुर इस जीवन को जान॥
यहाँ एक बस क्षणभर की सत्संगति का ही भाव।
भवसागर से तरने में बन जाता दृढ़तर नाव॥

गो० तुलसीदासजी ने अपनी 'विनय-पत्रिका' में सत्संग को भगवान का निज अंग बतलाया है–'देहि सत्संग निज अंग श्रीरंग भवभंग कारण शरण शोकहारी।' एक बार विश्वामित्रजी और वशिष्ठजी में यह विचार हुआ कि तप महान है या सत्संग। स्वयं भगवान ने यह निर्णय किया कि क्षणभर का सत्संग लाखों साल की तपस्या से महत्तर है। रामचरितमानस में भी लिखा है–

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला इक अंग।
तुल न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सत्संग॥

संतों की वाणियों में ईश्वर की मान्यता बड़ी मजबूती से की गयी है। ईश्वर-भजन का अवलंब लेकर ही मनुष्य इस दुःखमय संसार सागर को पार कर सकता है। संतों का संग या सत्संग मोक्ष पाने का मार्ग है। गो० तुलसीदासजी के शब्दों में–

मति कीरति गति भूति भलाई।
जब जेहि जतन जहाँ जेहि पाई॥
सो जानब सत्संग प्रभाऊ।
लोकहु वेद न आन उपाऊ॥

सत्संग से सुबुद्धि, यश, गति अर्थात् मोक्ष, ऐश्वर्य और शीलता (भलपन) मिलती है। कहने का तात्पर्य है, अगर हम ईश्वर का भजन और गुरु की सेवा नहीं करेंगे, तो हमारी गति अच्छी नहीं होगी। यह ज्ञान हमें संतों के संग एवं उनकी वाणी से ही मिलता है। उन्होंने कल्याणस्वरूप परमात्मा को पाने के लिए बहुत ऊँचा ज्ञान दिया है। ईश्वरस्वरूप के संबंध में संतों ने बतलाया है कि इन्द्रियों से जिसका ज्ञान हो, वह ईश्वर नहीं है, बल्कि जो इन्द्रियातीत परम सनातन तत्त्व है, वही ईश्वर है; क्योंकि इन्द्रियों की पकड़ में आनेवाला सारा पदार्थ असत् है। मात्र ईश्वर ही सत् है और उनका संग ही सत्संग है। संतों की संगति से अप्राप्य नाम की कोई चीज नहीं रहती। अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष–सभी चीजें अनायास ही सुलभ हो जाती हैं। संत सुंदरदासजी ने भी संत-समागम की कितनी सुन्दर महिमा गायी है–

तात मिलै पुनि मात मिलै,
सुत भ्रात मिलै युवति सुखदाई।
राज मिलै गज बाज मिलै,
सब साज मिलै मन वांछित पाई॥

लोक मिलै सुर लोक मिलै,
विधिलोक मिलै बैकुण्ठहु जाई।
सुन्दर और मिलै सब सुख,
संत समागम दुर्लभ भाई॥

भगवान शंकरजी ने भी पार्वतीजी से सत्संग की महिमा का वर्णन किया है–'गिरिजा संत समागम सम न लाभ कछु आन।' अतएव हमें नित्य प्रति सत्संग करना चाहिए। सत्संग बुद्धि की जड़ता को हरती है, वाणी में सत्य का संचार करती है। चित्त को आनंदित करती है तथा समस्त दिशाओं में कीर्ति का विस्तार करती है। जगत में जितनी आसक्तियाँ हैं, सत्संग ही उन्हें समूलतः नष्ट कर देता है। भगवान श्रीकृष्ण का उपदेश है–सत्संग जिस प्रकार मुझे वश में कर लेता है, वैसा साधन न योग है, न सांख्य है, न स्वाध्याय है और न धर्म पालन है। तपस्या, त्याग और दक्षिणा से भी मैं उतना प्रसन्न नहीं हूँ। कहाँ तक कहूँ–व्रत, यज्ञ, वेद, तीर्थ और यम-नियम भी सत्संग के समान मुझे वश में करने में समर्थ नहीं है।

हमलोग एकत्रित होकर संतों की वाणी को पढ़ते-सुनते हैं, यह सत्संग बाहरी है। बाहरी सत्संग में श्रवण ज्ञान होता है, बुद्धि का विकास होता है; परन्तु अनुभव ज्ञान नहीं होता। अनुभव ज्ञान को प्राप्त करने के लिए ही हमें गुरु की आवश्यकता होती है। वे ही बतलाते हैं कि सत् क्या है एवं इसका पता कैसे चलेगा? वे कहते हैं कि अगर अपने अंदर खोजोगे, तो सत् को पा लोगे। जिस प्रकार कस्तूरी मृग की नाभि में रहती है, परन्तु अज्ञानवश वह उसे इधर-उधर ढूँढ़ता है, उसी तरह हम मूर्ख जन भी अज्ञानवश ईश्वर को मंदिरों एवं तीर्थों में ढूँढ़ते हैं। संत सद्गुरु ही हमें अपने ज्ञान द्वारा यह बतलाते हैं कि ईश्वर अपने अंदर है और अंतर की साधना अर्थात् ध्यान द्वारा ही हम अपने अंदर सत् का साक्षात्कार कर सकते हैं। संतों ने ध्यान-साधना के द्वारा ही ईश्वर के स्वरूप का साक्षात्कार किया है। हमारे पूज्य गुरुदेव की प्रेरणा देनेवाली यह पावन वाणी है–

नित सत्संगति करो बनाई।
अंतर बाहर द्वै विधि भाई॥
धर्म कथा बाहर सत्संगा।
अंतर सत्संग ध्यान अभंगा॥

उन्होंने अंतर और बाहर दोनों प्रकार के सत्संग पर जोर दिया है। बाहरी सत्संग का भी होना आवश्यक है; क्योंकि इससे हमें जिस ज्ञान की प्राप्ति होती है, वह ज्ञान हमारे मन को अंतर्मुख करता है और जो सत् है, उसे पहचानने की प्रेरणा देता है। हमारे पूज्य गुरुदेव ने अपनी पावन वाणी में सत्संग को मजबूत गढ़ कहा है–'सत्संग गढ़ में वास हो, भवपाश क्या क़रे।' इस गढ़ में रहकर ही मनुष्य काम-क्रोधादिक विकारों के आक्रमण पर रोक लगा सकता है और उनका दमन करते-करते अंततः नाश कर सकता है। सत्संग में जिस ज्ञानामृत की वर्षा होती है, सच्चे भक्त उसमें सराबोर हो उसे अपने आचरण में उतारकर आवागमन के चक्र से मुक्त हो जाते हैं। संत कबीर साहब की वाणी है–'मूरख जन कोई सार न जाने, सत्संग में अमृत बरसे।'

संतमत में सत्संग के साथ ही गुरु की अनिवार्यता भी स्वीकार की गयी है। गुरु के बिना सत्संगी साधक न साधना के यथार्थ को समझ सकता है और न ही साधना में एक डेग भी आगे बढ़ सकता है। एक बंगाली महात्मा ने भी बहुत ही सुन्दर कहा है–'करऽ साधु समागम, पवित्र होइबे मऽन, घुचिबे मोह अंधकार रे।' अतः सत्संग क़ी महिमा अकथ और अनुपम है। मन के अंधकार को दूर कर प्रकाश की ओर ले जाने में सत्संग ही समर्थ है। संत-समागम से जन्म-जन्मान्तर के जो कलुष हमारे अंदर जमे हैं, वे दूर हो जाते हैं। जो पतित है, गिरा हुआ है, अधम है, उसे पावन करनेवाले कौन हैं? संत हैं। भटके हुए को सन्मार्ग पर लानेवाले संत हैं। इसलिए संतों की महिमा एवं सत्संगति से बढ़कर और कुछ नहीं है। □

त्याग के बिना उन्नति संभव नहीं

–जेम्स एलन

जिन बड़े अधिकारों और उच्च स्थानों को महान पुरुषों ने प्राप्त कर उनका उपभोग किया था, वे केवल छलाँग मारकर एकाएक नहीं पहुँचे थे, बल्कि वे केवल रात्रि में, जिस वक्त उनके साथी सोते थे, बराबर जागकर पूर्ण उन्नति के लिए परिश्रम किया करते थे। जिस समय आप अपने स्वार्थ को छोड़कर त्याग पर उद्यत हो जाएँगे, उसी समय स्थायी सुख आपको प्राप्त होने लगेगा। त्याग के बिना न तो कोई उन्नति हो सकती है और न किसी उद्देश्य की पूर्ति। सांसारिक सफलता वहीं तक प्राप्त हो सकेगी, जहाँ तक कि मनुष्य अपने पाशविक विचारों का हनन कर लेगा, अपने मस्तिष्क को अपनी आयोजना पर स्थिर रखेगा और स्वावलंबी होते हुए अपने व्रत पर दृढ़ रहेगा। अपने विचारों को वह जितना ही ऊँचा उठा लेगा, उतना ही वह सच्चा धर्मात्मा और साहसी बन जाएगा, उतनी ही उसे स्थायी सफलता भी मिलेगी और वह सुख का भागी होगा। जितनी भी सफलताएँ हैं, चाहे वे व्यापार में हों या मानसिक या आध्यात्मिक, वे सब विचारों को ठीक मार्ग पर लगाने से ही मिलती हैं। सबके लिए एक ही नियम है, एक ही विधि है, अंतर केवल उद्देश्य में है। आत्मसंयम धन से भी मूल्यवान है। शान्ति से मनुष्य का स्थायी कल्याण होता है। एक विद्वान का कथन है कि मनुष्य के लिए सत्य वैसी ही अमूल्य वस्तु है, जैसे कि स्त्री के लिए शील। जिस मनुष्य में सत्य नहीं है, उसे मनुष्य कहलाने का कोई अधिकार नहीं है और वह पशुओं से भी गया बीता है। अतएव हमें सत्य बोलना चाहिए। हम चाहे कहीं हों और किसी दशा में हों, सत्य का कभी त्याग न करें।

मनुष्य जबतक मनसा, वाचा और कर्मणा झूठ बोलना नहीं छोड़ देता, तबतक वह सच्चा ईमानदार नहीं बन सकता। जिस प्रकार पागल मनुष्य आसमान से सूर्य को पकड़कर नहीं ला सकता, उसी प्रकार बेईमान ईमानदार को नुकसान नहीं पहुँचा सकता। बेईमान यदि कभी ईमानदार को धोखा देने का प्रयत्न करेगा, तो वह धोखा लौटकर बेईमान को ही हानि पहुँचाएगा और ईमानदार साफ बच जाएगा।

अधिक खाना भी स्वास्थ्य के लिए बुरा है और कम खाना भी बुरा है। खाने-पीने में मनुष्य को संयमी होना चाहिए। जो मनुष्य संयमी नहीं होते, वे ही मदिरा आदि का सेवन करने लगते हैं और विषय-वासना में लिप्त हो जाते हैं। इन सब ऐबों से संयमी मनुष्य बचे रहते हैं। वे उतना ही भोजन करते हैं, जितना वे पचा सकते हैं और जो स्वास्थ्य के लिए लाभदायक होता है। शरीर और स्वास्थ्य के लिए बहुत सादे और हल्के भोजन की जरूरत है। हम साधारणतया यह कह सकते हैं कि गाय का दूध बहुत ही हल्का, सादा, स्वादिष्ट और स्वास्थ्यप्रद है। यह प्रायः बालक से लेकर वृद्ध तक सभी के लिए उपयोगी है। इसका सेवन मनुष्य प्रत्येक अवस्था में कर सकता है। आपका काफी बल क्रोधादि के कारण नष्ट होता है। शरीर को भस्म कर देने के लिए क्रोध से बढ़कर कोई चीज नहीं। क्रोधी मनुष्य दिन-रात अपने को जलाता रहता है। चिंता भी मुनष्य के शरीर के लिए विषतुल्य है। चिंता की उपमा चिता से दी जाती है। ईर्ष्या, द्वेष, निंदा, घृणा सब शरीर को घुलानेवाली हैं। इनसे मन और शरीर दोनों की अवनति होती है। सबेरे से शाम तक काम करके मनुष्य इतना नहीं थकता, जितना क्रोध करके अथवा चिंता करके एक घंटे में थक जाता है। हमने देखा है कि कभी-कभी मनुष्य क्रोध के आवेश में आकर गिर जाते हैं, बेहोश हो जाते हैं और तो क्या, आत्महत्या तक कर लेते हैं। जो केवल दोष ढूँढ़ा करता है और दूसरों की सदा निंदा किया करता है, वह अपना और पराया दोनों का शत्रु है और आत्मोन्नति के मार्ग से पीछे हट जाते हैं। इसलिए कभी किसी के अवगुणों को नहीं देखें, किंतु गुणों को देखकर प्रवृत्त रहने का उपदेश देते रहें। इसी में स्वयं आपका और दूसरों का उपकार है। ❑

स्वधर्म की रक्षा करने पर सदा सर्वत्र मंगल होता है।–श्रीकृष्ण-जन्मखंड ६/२३

सम्पादकीय

आहो भाई होउ गुरु आश्रित हो

संतों, महापुरुषों तथा मनीषियों की वाणियों का स्वाध्याय करने और उनपर मनन करने से पता चलता है कि भक्ति-परमार्थ का विषय अत्यन्त सूक्ष्म, गूढ़ तथा दुर्गम है। भक्ति-परमार्थ का मार्ग एक ऐसा मार्ग है, सद्गुरु की सहायता के बिना उस मार्ग पर मनुष्य एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकता। इसीलिए उपनिषत्कार ने यह उपदेश किया है कि—

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।
क्षुरस्यधारा निशिता दुरत्यया
दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति॥

अर्थात् अरे अविद्याग्रस्त लोगो! उठो, अज्ञान-निद्रा से जागो और महान पुरुष (सद्गुरु) की शरण में जाकर ज्ञान प्राप्त करो। जिस प्रकार क्षुरे की धार तीक्ष्ण और दुस्तर होती है, तत्त्वज्ञानी लोग भक्तिमार्ग को वैसा ही दुर्गम बतलाते हैं।

महापुरुषों, संतों तथा मनीषियों ने भक्ति के विषय पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए यह कहा है कि इस दुर्गम पथ पर सद्गुरु की सहायता के बिना कोई भी सफलता प्राप्त नहीं कर सकता।

भक्तिमार्ग पर अग्रसर होने के लिए सद्गुरु की शरण ग्रहण करना आवश्यक है। जिन्होंने भी भक्ति-परमार्थ के मार्ग में सफलता पायी है, सद्गुरु के आशीर्वाद से ही पायी है। धनी धर्मदासजी जो कि संत कबीर साहबजी के गुरुमुख एवं प्रमुख शिष्य हुए हैं, वे अपने जीवन का अनुभव इन शब्दों में वर्णन करते हैं—

अखिल बिबुध जग में अधिकारी।
व्यास वसिष्ठ महान आचारी॥
गौतम कपिल कणाद पतंजलि।
जैमिनी बाल्मीकि चरणन बलि॥
ये सब गुरु की शरणहि आए।
तासे जग में श्रेष्ठ कहाए॥—गुरु-महिमा

महर्षि व्यास, महर्षि वसिष्ठ तथा अन्य सभी महापुरुषों ने सद्गुरु की शरण में जाकर और उनसे भक्ति का भेद प्राप्त करके ही इस मार्ग में सफलता प्राप्त की और गौरव के अधिकारी हुए।

अम्बरीष प्रह्लाद विभीषण।
इत्यादिक जो भये भक्तजन॥
औरहु यती तपी बनवासी।
ये सब गुरु के परम उपासी॥
हरि बिरंचि शिव दीक्षा लीन्हा।
नारद धीमर को गुरु कीन्हा॥
सन्त महन्त साधु हैं जेते।
गुरु पद पंकज सेवहि तेते॥ (गुरु-महिमा)

सद्गुरु की शरण ग्रहण किये बिना मनुष्य चाहे कितना ही जप-तप आदि कर लें, कितना ही वेद-शास्त्रों का अध्ययन कर ले, भक्ति-परमार्थ का भेद वह नहीं पा सकता। मनुष्य चाहे कितना ही पढ़-लिखकर खप मरे और योग, यज्ञ तथा तप आदि करोड़ों उपाय कर ले, सद्गुरु की कृपा के बिना भक्ति का भेद नहीं पा सकता।

अष्टादश और चार षट, पढ़ि पढ़ि अर्थ कराहिं।
भेद न पावैं गुरु बिना, सहजो सब भरमाहिं॥

लोग अठारह पुराण, चार वेद और छह शास्त्र कंठस्थ करके अपनी विद्वत्ता से उनके अनेक प्रकार के अर्थ करते रहते हैं, परन्तु संत सहजोबाई जी का कथन है कि सद्गुरु की शरण ग्रहण किये बिना उनका वास्तविक भेद नहीं खुलता और वे सदा भ्रम-अज्ञान के गहन तिमिर में ही भटकते रहते हैं। गुरु अमरदास जी कहते हैं कि सद्गुरु की शरण ग्रहण किये बिना संपूर्ण संसार मृत्यु को प्राप्त होकर दुःखी एवं अशान्त हो रहा है, किसी को भी शान्ति प्राप्त नहीं है।

देवर्षि नारदजी के विषय में ऐसा प्रसिद्ध है कि अपने तप के प्रभाव से उन्हें ऐसी शक्ति प्राप्त हो गयी थी कि वे इस शरीर से ही जब चाहते वैकुंठ चले जाते थे। ऐसी शक्ति प्राप्त करके उनके हृदय में अहंकार प्रवेश कर गया था। एक बार देवर्षि नारदजी जब वैकुंठ गये तो भगवान विष्णु ने हमेशा की तरह उन्हें बैठने के लिए आसन दिया। भगवान विष्णु से कुछ देर वार्तालाप करने के उपरांत जब नारदजी विदा हुए, तो भगवान ने अपने अनुचरों को बुलाया और जहाँ नारदजी बैठे थे, उस स्थान की ओर संकेत करते हुए कहा—'नारदजी के बैठने से यह स्थान अपवित्र हो गया है, अतएव इस स्थान को अच्छी तरह धो दो।' अनुचर आज्ञा-पालन में लग गये। इधर नारदजी को कोई बात याद आ गयी। वह अभी दूर नहीं गये थे, अतः पुनः वापस लौट आये। परन्तु अनुचरों को वह स्थान, जहाँ वह कुछ देर तक पहले बैठे थे, साफ करते देखकर विस्मय से खड़े रह गये। कुछ क्षण वह मौन खड़े रहे, फिर भगवान विष्णु के चरणों में निवेदन किया—'भगवन्! यहाँ पर तो कुछ देर पहले मैं ही बैठा था, फिर इसे साफ क्यों कराया जा रहा है?' भगवान विष्णु बोले, 'नारदजी! आपके जाने के उपरांत हम सदैव ही उस स्थान को साफ करवाते हैं, जहाँ आप बैठते हैं।

इसमें नई बात कौन-सी है?' नारदजी और भी अधिक विस्मित होते हुए बोले, 'पर ऐसा क्यों? ऐसा करने का क्या कारण है? मैं क्या अपवित्र हूँ, जो मेरे बैठने से स्थान भी अपवित्र हो जाता है।'

भगवान बोले, 'नारदजी! यह ठीक है कि आप ज्ञानी, ध्यानी और वेद-शास्त्रों के ज्ञाता हैं। यह भी ठीक है कि आप महान तपस्वी हैं और तपोबल से जब चाहें वैकुंठादि देवलोकों में आ-जा सकते हैं, आपको इसके लिए कोई रोक-टोक नहीं है। परन्तु आपने चूँकि अभी तक गुरु की शरण ग्रहण नहीं की, इसलिए हम आपको पवित्र नहीं मानते। यही कारण है कि जब आप यहाँ आकर बैठते हैं, तो आपके जाने के बाद हम वह स्थान अपवित्र समझकर स्वच्छ एवं पवित्र करवाते हैं। संत कबीर साहब की वाणी में आया है–

निंदक एकहु ना मिलै, पापी मिलै हजार।
इक निगुरे के सीस पर, लख पापी का भार॥
गुरु बिनु माला फेरता, गुरु बिनु करता दान।
गुरु बिनु सब निस्फल भया, बूझो वेद पुरान॥
१चौंसठ दीवा जोय के, २चौदह चन्दा माहिं।
तेहि घर किसका चाँदना, जेहि घर सतगुरु नाहिं॥

एक संत कवि इस प्रकार कहते हैं–

खाक के पुतले की कीमत खाक है मुर्शिद बगैर।
सरबसर मिट्टी का माधो राख है मुर्शिद बगैर॥
लाख तीरथ हज करे रोजा नमाज और बन्दगी।
फिर भी ऐ इन्सान तू नापाक है मुर्शिद बगैर॥

भगवान विष्णु के वचन सुनकर नारदजी ने कहा–'भगवन्! यह सत्य है कि मैंने किसी को गुरु धारण नहीं किया, परन्तु तप-साधना तो की है और उस तप-साधना द्वारा आपको प्राप्त करने में भी सफल हुआ हूँ। आपको प्राप्त करके क्या मैं पवित्र नहीं हो गया?'

भगवान विष्णु बोले–'नारदजी! यह ठीक है कि आप अपनी तपसाधना के द्वारा वैकुंठ आने के अधिकारी हो गये हैं, परन्तु आपका यह कहना सरासर गलत है कि आप मुझे प्राप्त कर चुके हैं। आपकी साधना मनमति की साधना है, इसलिए आपके अंदर अभी अहंता एवं अहंकार ने आसन जमा रखा है। इस अहंता-अहंकार के परदे ने अभी भी आपको मुझसे अलग कर रखा है। अहंता-अहंकार के इस परदे को दूर करने के लिए ही गुरु की शरण में जाना आवश्यक होता है।' नारदजी ने कहा–'यदि गुरु की शरण में जाना इतना ही आवश्यक है तो फिर मैं आपको ही गुरु धारण कर लेता हूँ।'

नारदजी ने शंका करते हुए कहा, 'आप गुरु की भक्ति करने पर बल दे रहे हैं, तो क्या ब्रह्म, ईश्वर अथवा देवी-देवताओं की भक्ति करने से यह कार्य सिद्ध नहीं हो सकता?' भगवान विष्णु ने मुस्कुराते हुए कहा, 'नारदजी! मैंने आपसे पहले भी कहा है कि मनुष्य का प्रयोजन जब भी सिद्ध होगा, गुरु के माध्यम से ही सिद्ध होगा; क्योंकि गुरु की मनुष्य के हृदय में विद्यमान अज्ञान का निबिड़ तम दूर करके उसमें ज्ञान का प्रकाश कर सकने में समर्थ हैं। इसलिए गुरु को ही सब कुछ समझकर मनुष्य उनकी ही पूजा-आराधना करे। सुनिये, शास्त्र क्या कहते हैं–

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरु साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥
अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥
अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

नारदजी ने निवेदन किया, 'भगवन्! ज्ञान दृष्टि तो मुझे पहले से प्राप्त है, फिर इसके लिए गुरु धारण करने की क्या आवश्यकता है।' भगवान बोले, 'जिसे आप ज्ञान कहते हैं और समझते हैं, वह तो वास्तव में अज्ञान है, जिसने आपके अंदर हठधर्मी, अहंता और अहंकार भर दिया है। आप इस समय जो कुछ भी कह रहे हैं, अज्ञान के वश होकर ही कह रहे हैं। यदि आपके ज्ञान चक्षु वास्तव में ही खुले होते तो फिर आप वाद-विवाद में कदापि न पड़ते, प्रत्युत् मेरी, जिसकी आप उपासना करते हैं, बात तत्काल मान लेते।' भगवान विष्णु के ये वचन सुनकर नारदजी की आँखें खुलीं और उन्हें भूल का अनुभव हुआ। उन्होंने निवेदन किया–'मैं किसको अपना गुरु बनाऊँ?' भगवान बोले, 'आप कल प्रातःकाल गंगाजी के किनारे चले जाएँ और जो मनुष्य सबसे पहले मिले, उसे ही अपना गुरु मानकर उनसे दीक्षा ले लें। इसी में आपकी भलाई है।'

भगवान से आज्ञा लेकर नारदजी विदा हुए और मर्त्यलोक में आए। उनके मन-मस्तिष्क में सारी रात भगवान विष्णु की बातें ही गूँजती रहीं। प्रातः होते ही वे गंगाजी की ओर चल पड़े। गंगाजी के निकट पहुँचकर क्या देखते हैं कि एक धीवर (मछुआ) कंधे पर जाल रखे सामने से आ रहा है। उसे देखते ही नारदजी ने अपने माथे पर हाथ मारा और मुँह में बड़बड़ाते हुए कहा, 'यह कैसा अपशकुन हुआ? भगवान ने तो कहा था कि सबसे पहले जो मनुष्य मिले, उसे ही गुरु धारण कर लेना, परन्तु सबसे पहले तो यह धीवर ही मिला। तो क्या इसे ही गुरु बनाना पड़ेगा? यह अपढ़, गँवार धीवर मुझ जैसे ज्ञानी-ध्यानी का

गुरु कैसे हो सकता है? यह भला मुझे क्या ज्ञान देगा?

यह सोचकर वे उलटे पाँव लौट चले। जैसे ही वे वापस मुड़े कि पीछे से आवाज आई—यह नारद भी कैसा नासमझ और अज्ञानी है; क्योंकि इसे भगवान विष्णु की बात पर भी विश्वास नहीं। भगवान के समझाने पर आया था गुरु धारण करने; परन्तु इसमें तो अहंता-अंहकार कूट-कूटकर भरा हुआ है।

कानों में यह शब्द पड़ते ही नारदजी ठिठक गये। कुछ पल इन शब्दों पर विचार किया और फिर लौटकर वहाँ पहुँचे, जहाँ धीवर खड़ा था, उनके चरणों में गिर पड़े और गलती की क्षमा माँगी। तत्पश्चात् बोले—'आपको कैसे पता चला कि भगवान के कहने पर मैं यहाँ गुरु धारण करने के लिए आया हूँ?'

धीवर ने हँसते हुए कहा, 'तुम्हें इस बात से क्या लेना-देना है। तुम गुरु धारण करने आये हो या मुझसे सवाल-जवाब करने?' नारदजी ने पुनः क्षमा-याचना की और दोनों हाथ जोड़कर निवेदन किया, 'गुरुदेव! मुझपर कृपा कीजिए और अपना शिष्य बना लीजिए।' धीवर ने गुरु-दीक्षा देकर नारदजी को विदा किया। नारदजी वहाँ से सीधे वैकुंठधाम पहुँचे। उन्हें देखकर भगवान विष्णु बोले, 'नारदजी! गुरु मिले?' नारदजी ने उत्तर दिया, 'भगवन्! गुरु मिले तो सही, पर....!'

भगवान ने उनकी बात बीच में ही काटते हुए कहा, 'नारदजी! 'पर' शब्द कहने का अर्थ है कि आपने मेरे कहने से गुरु धारण तो किया; परन्तु आपकी श्रद्धा एवं निष्ठा अपने गुरु में नहीं है। श्रद्धारहित मनुष्य के लिए तो श्रीमद्भगवद्गीता में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है—

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः॥

अर्थात् विवेकहीन और श्रद्धारहित संशय युक्त मनुष्य परमार्थ से अवश्य भ्रष्ट हो जाता है। ऐसे संशययुक्त मनुष्य के लिए न यह लोक है, न परलोक है और न सुख ही है। इसलिए भक्ति-परमार्थ की दृष्टि से आपका सब किया-कराया व्यर्थ हो गया। अब तो आपको चौरासी अवश्य भुगतनी पड़ेगी।' भगवान विष्णु के ये वचन सुनकर नारदजी के होश उड़ गये। उन्होंने निवेदन किया—'प्रभो! गुरु के प्रति अश्रद्धा प्रकट करके मैंने भारी भूल की, जिसका दंड आपके कथनानुसार चौरासी का चक्कर है। कृपा करके चौरासी के चक्र से बचने का उपाय भी आप ही बतायें। भगवान विष्णु बोले, 'चौरासी से बचानेवाले तो संसार में केवल गुरुदेव ही होते हैं, मैं तुम्हारी कोई सहायता नहीं कर सकता। इसलिए यदि चौरासी से बचना चाहते हो, तो फिर गुरु की शरण में जाओ; चौरासी से बचने का अन्य कोई उपाय नहीं। यही तो गुरु की विशेषता है और इसीलिए ही सभी संतों-महापुरुषों ने गुरु की महिमा का मुक्तकंठ से बखान किया है।

नारदजी फिर मर्त्यलोक आये और गंगाजी के किनारे पहलेवाले स्थान पर गुरुदेव की खोज में पहुँचे। काफी देर तलाश करने के उपरांत उन्हें गुरुदेव के दर्शन हुए। नारदजी तुरत उनके चरणों में जा गिरे और चौरासी के चक्र—आवगमन से मुक्त होने की साधना-प्रक्रिया को प्राप्त किया। उनके दिल की अवस्था बदल चुकी थी और उनमें गुरुदेव के प्रति पूर्ण श्रद्धा थी।

गुरुदेव ने उनके हृदय की अवस्था को जानकर कहा, 'अब तुम वास्तव में ही गुरुमुख बन गये हो और तुम्हारे दिल में गुरु के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो गयी है। अब बैठ जाओ और आँखें बंद करके अपने अंदर गुरु का ध्यान करो।'

नारदजी ने आँखें बंद करके गुरु का ध्यान किया तो अहंता-अहंकार के सब आवरण छिन्न-भिन्न हो गये और घट में निर्मल प्रकाश फैल गया। उस प्रकाश में नारदजी को गुरुदेव के ज्योतिर्मय स्वरूप के दर्शन हुए। गुरुदेव के इस अलौकिक स्वरूप के दर्शन कर वे आत्मविभोर हो गये। तभी अपने अंदर उन्हें गुरुदेव की आवाज सुनाई दी—'नारद! तुम गुरु को अपढ़ समझ रहे थे; परन्तु स्मरण रखो कि गुरु परम पुरुष अथवा परम तत्त्व है। यही गुरु का वास्तविक स्वरूप है, इसलिए गुरु के अस्तित्व में तनिक भी संदेह करना अथवा अश्रद्धा रखना कदापि उचित नहीं। अब तुमने गुरु के वास्तविक स्वरूप को जान लिया, इसलिए अब तुम निगुरे नहीं रहे, अपितु गुरुमुख बन गये हो। अब तुम जहाँ बैठोगे, वह स्थान पवित्र समझा जाएगा।' नारदजी ने आँखें खोलीं। गुरुदेव को सम्मुख देखकर उन्होंने दण्डवत् वंदना की, तत्पश्चात् हाथ जोड़कर निवेदन किया, 'गुरुदेव! मुझपर अपनी कृपादृष्टि सदा बनाये रखें।'

अभिप्राय यह कि भक्तिमार्ग पर चलनेवाले जिज्ञासु पुरुष के लिए गुरु की शरण ग्रहण करना परमावश्यक है। श्रद्धा, निष्ठा एवं विश्वास के साथ गुरु के वचनों पर आचरण करके ही मनुष्य इस मार्ग पर सफलता प्राप्त कर सकता है और अपना जीवन धन्य बना सकता है।

गुरु की नित कर पूजा, जगत इन सम नहिं दूजा।
मेँहीं को आन नहिं सूझा, फकत गुरु ही आधारा है॥
गुरु हैं बड़े गोविन्द तें, मन में देखु विचार।
हरि सुमिरै सो वार है, गुरु सुमिरै सो पार॥ □

अखिल नेपाल संतमत-सत्संग का छठा वार्षिक अधिवेशन
दिनांक-६, ७ एवं ८ अप्रैल २०१५
(सोमवार, मंगलवार तथा बुधवार)
तदनुसार २०७१ चैत्र २३, २४ एवं २५ गते
स्थान-बुधनगर-४ खोक्साहा भेड़ियारी

(प्राचीन राज-दरबार, राजा विराट की नगरी तथा किच्चक-वध क्षेत्र)

यह वही स्थान है, जहाँ प्राचीन काल में द्रौपदी सहित पाँचो भाई पांडव एक वर्ष तक अज्ञातवास काल में राजा विराट के यहाँ वेश बदलकर रहे थे। यहीं पर भीम के द्वारा किच्चक का वध हुआ था।

आयोजक

अखिल नेपाल संतमत-सत्संग समिति बुधनगर-४/५
खोक्साहा-भेड़ियारी जिला मोरंग (नेपाल)

समन्वय

रानी विराटनगर एवं सीमांचल क्षेत्र जोगबनी,
जिला-अररिया (बिहार) अररिया

इस पावन अवसर पर संतमत के वर्तमान आचार्य पूज्यपाद महर्षि हरिनन्दन परमहंसजी महाराज एवं अन्य साधु-महात्माओं तथा विद्वानों का पदार्पण होने जा रहा है। अतएव सभी धर्मावलम्बियों (वैदिक, बौद्ध, जैन, सिक्ख, ईसाई, इस्लाम आदि) से निवेदन है कि अधिकाधिक संख्या में पधारकर संत-महात्माओं के दर्शन एवं प्रवचन से लाभ उठाएँ।

कार्यक्रम-प्रात: ६ बजे से एवं अपराह्न २ बजे से स्तुति-विनती, ग्रंथपाठ तथा प्रवचन।

द्रष्टव्य-दिल्ली, जम्मू-कश्मीर, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, आसाम, बंगाल, उड़ीसा से ट्रेन द्वारा आनेवाले सत्संगीगण कटिहार जंक्शन आएँ, वहाँ से ट्रेन द्वारा जोगबनी रेलवे स्टेशन उतरें। वहाँ से सत्संग-स्थल की दूरी २ किलोमीटर है। काठमाण्डु, सिलिगुड़ी से बस द्वारा आनेवाले रानी विराटनगर पहुँचें, वहाँ से सत्संग-स्थल निकट में ही है।

सम्पर्क सूत्र- श्रीसत्यनारायण मंडल, अध्यक्ष (०७०१११५९७२१, ००९७७-९८६२१५१५८९)
श्रीमनोज कुमार साह, सचिव (००९७७-९८४२०२७८९९)
श्रीराम ठाकुर, कोषाध्यक्ष (००९७७-९८४२१२६७२०)

वैशाली जिला संतमत-सत्संग का २५वाँ वार्षिक अधिवेशन

स्थान-संकटमोचन मंदिर अजमतपुर, प्रखंड-हाजीपुर दिनांक-१६ एवं १७ मार्च, २०१५ ई०

इस पुनीत अवसर पर संतमत के वर्तमान आचार्य पूज्यपाद महर्षि हरिनन्दन परमहंसजी महाराज एवं अन्य साधु-महात्माओं तथा विद्वानों का पदार्पण होने जा रहा है। अतएव सभी धर्मावलम्बियों से निवेदन है कि अधिकाधिक संख्या में पधारकर संत-महात्माओं के दर्शन एवं प्रवचन से लाभ उठाएँ। द्रष्टव्य-सभी ओर से आनेवाले सत्संगीगण विदुपुर स्टेशन या बस स्टैंड आएँ। वहाँ से सत्संग स्थल मात्र आधा किलोमीटर दक्षिण है। सम्पर्क सूत्र-श्रीमधुसूदन शर्मा (७६३१२३२७३०)

निवेदक-वैशाली जिला संतमत-सत्संग समिति एवं स्वागत समिति, अजमतपुर

पंजीयन सं0 R.N. 30868/66
रजिस्ट्रार ऑफ न्यूज पेपर (भारत सरकार) शान्ति-सन्देश Post R.N./P.T.-105/2015-17
फरवरी, २०१५ ई०

अखिल भारतीय संतमत-सत्संग का १०४वाँ वार्षिक महाधिवेशन

स्थान–जयनगर-कुशमौल, प्रखण्ड-भरगामा, जिला-अररिया (बिहार)
दिनांक–२८ फरवरी, १ एवं २ मार्च, २०१५ ई०
(शनिवार, रविवार एवं सोमवार)

जब द्रवहिं दीनदयाल राघव, साधु संगति पाइये ।
जेहि दरस-परस समागमादिक, पाप रासि नसाइये ॥ –गो० तुलसीदास

संतमता बिनु गति नहिं, सुनो सकल दे कान ।
जौं चाहो उद्धार को, बनो सन्त सन्तान ॥ –महर्षि मेँहीँ परमहंस

संसार के सभी प्राणी सुख की कामना रखते हैं; परन्तु अविनाशी सुख की उपलब्धि आध्यात्मिकता के अभाव में संभव नहीं। महापुरुषों का यह अकाट्य विचार है कि "जबतक किसी देश का आध्यात्मिक स्तर उत्तम और ऊँचा नहीं होगा, तबतक उस देश की सदाचारिता ऊँची और उत्तम नहीं होगी। जबतक सदाचारिता ऐसी नहीं रहेगी, तबतक सामाजिक नीति अच्छी नहीं होगी। जबतक सामाजिक नीति अच्छी नहीं होगी, तबतक राजनीति अच्छी और शान्तिदायक नहीं होगी। बुरी सामाजिक नीति के कारण राजनीति शासन सँभालने के योग्य हो नहीं सकेगी और उस देश में अशान्ति फैली रहेगी।" इसी उद्देश्य को दृष्टिकोण में रखते हुए इस महाधिवेशन का आयोजन किया जा रहा है।

इस पावन अवसर पर संतमत के महान आचार्य संत सद्गुरु महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज के परम प्रिय शिष्य संतमत के वर्तमान आचार्य पूज्यपाद महर्षि हरिनन्दन परमहंसजी महाराज एवं अन्य साधु-महात्माओं तथा विद्वानों का पदार्पण होने जा रहा है। अतएव सभी धर्मावलम्बियों (वैदिक, बौद्ध, जैन, सिक्ख, ईसाई, इस्लाम आदि) से निवेदन है कि अधिकाधिक संख्या में पधारकर संत-महात्माओं के दर्शन एवं प्रवचन से लाभ उठाएँ।

कार्यक्रम–प्रातः ६ बजे से एवं अपराह्न २ बजे से स्तुति-विनती, ग्रंथपाठ तथा प्रवचन।

द्रष्टव्य–जम्मू-कश्मीर, पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, उत्तर-प्रदेश, गुजरात, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, प० बंगाल, आसाम आदि जगहों से आनेवाले सत्संगीगण कटिहार जं० आएँ। वहाँ से ट्रेन द्वारा फारबिसगंज पहुँचें। स्टेशन के निकट पश्चिम की तरफ सत्संग-स्थल जाने के लिए सत्संग-समिति की ओर से निःशुल्क बस-सेवा उपलब्ध रहेगी। दरभंगा की ओर से आनेवाले बस द्वारा नरपतगंज आएँ। वहाँ से जीप-मैक्सी आदि सवारी द्वारा १५किमी० दक्षिण सत्संग-स्थल जयनगर-कुशमौल पहुँचें। सम्पर्क सूत्र–श्रीविजय यादव (प्रमुख) ९१९९४२१७११, श्रीमिथिलेश भारती (मुखिया)-९९७३७२०७६४, श्रीमिथिलेश राय (मुखिया)-९००६२२०१०४, श्रीसनदेव मेहता (पूर्व मुखिया)-९८०१८४०७१८

निवेदक– अखिल भारतीय संतमत-सत्संग महासभा एवं स्वागत समिति, जयनगर-कुशमौल

डॉ० स्वामी गुरु प्रसाद, एम०ए० (द्वय), एम०एड०, पी-एच०डी०, महर्षि मेँहीँ आश्रम कुप्पाघाट, भागलपुर-3 (विहार) द्वारा संपादित एवं प्रकाशित तथा 'शान्ति-संदेश' प्रेस, महर्षि मेँहीँ आश्रम कुप्पाघाट, भागलपुर-3 (विहार) में मुद्रित।